प्रकाशक
श्री धर्मचन्द्र नारंग,
हिन्दी भवन,
लाहौर

मूल्य १)

मुद्रक—
श्री देवचन्द्र नारंग,
एन० पी० प्रेस,
अनारकली, लाहौर

पात्र-परिचय

प्रस्तावना :—

बालक मोहन	...	उम्र प्रायः १२ वर्ष
बालक प्रकाश	...	उम्र प्रायः १२ वर्ष
बालिका कमला	...	उम्र प्रायः ८ वर्ष

मुख्य कथानकः—

रायबहादुर जगदीशचंद्र	...	'घाटशीला कापर' मिल के मालिक
कैलाशचंद	...	रायबहादुर जगदीशचंद्र का पुत्र
डा० मोहन	...	'घाटशीला कापर' का डाक्टर
गोपाल	...	कारखाने का एक गैंगमैन
माणिकचंद	...	एक एम. एल. ए.
डा० प्रकाश	...	माणिकचंद का पुत्र
कमला	...	रायबहादुर जगदीशचंद्र की लड़की
रत्ना	...	गोपाल की विधवा बहन

पुलिस इंस्पेक्टर, कांस्टेबल, मजदूर और बुधुआ नौकर

गोपाल की स्त्री, गोपाल की माँ, एक वृद्धा पड़ोसिन

अपनी सफाई

मुकुट द्वि-अंकी नाटक है। मुझे पता नहीं कि द्वि-अंकी नाटक शास्त्र-सम्मत है या नहीं। पाँच, चार, तीन, तथा एक अंक के नाटक तो लिखे जाते हैं, परन्तु दो अंकों के नहीं। मैंने यह द्वि-अंकी नाटक इसी अभाव की पूर्ति के लिये लिखा है—किन्तु विद्रोहात्मक भाव से नहीं। जब कि सिनेमा ने लोगों को एकदम वशीभूत कर रखा है, जब कि आधुनिक जीवन में पाँच-छः घंटे तक दर्शक बैठना पसंद नहीं करेंगे, तब नाटकों को भी नवीन रुचि के अनुकूल होना पड़ेगा। सिनेमा के साथ सफलता पूर्वक प्रतिस्पर्धा करने के लिये नाटक को भी सिनेमा-का-सा होना होगा। यानी नाटक का अभिनय-काल उतना ही —लगभग दो घंटे—हो, उससे अधिक नहीं। इस दो घंटे के अंदर भी दर्शकों को ज़रा हाथ पाँव हिलाने का अवसर मिलना चाहिए जैसे सिनेमा में विश्रान्ति-काल होता है। सिनेमा में यह विश्रान्ति-काल घड़ी की सुई पर निर्भर करता है। फलस्वरूप कभी-कभी तो एक दृश्य के अन्दर ही दर्शकों का ध्यान भंग कर दिया जाता है। किन्तु नाटक में हमें ख़याल रखना पड़ेगा कि कथानक बीच से न टूटे। दर्शकों की तल्लीनता या ध्यान ऐसे स्थान पर भंग हो, जहाँ उन्हें धक्का सा न लगे, उनके भावों की शृंखला झटक कर न टूटे, अपितु दर्शकों की भावात्मकता इतनी विचलित हो उठे कि वे उस विश्राम काल के बाद की घटनाओं के क्लाइमैक्स तथा ऐंटिक्लाइमैक्स के बीच पूर्ण-रूपेण भावोद्रेक से अभिभूत रहें। नाटक की सफलता इसी भावोद्रेक द्वारा दर्शक को वास्तविकता से हटा कर कल्पित व्यक्तियों

के जीवन में चित्रित कर, अभिनीत व्यक्तियों के भावों के साथ साथ दर्शक के भावों को विचलित कर दर्शक के हृदय को निर्मल अनुभूति देने में ही है। अगर यह भावोद्रेक पूर्ण शिखर पर पहुँचने के पहले ही भंग हो गया तो दर्शक पर उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसीलिए नाटक के अंकों का विभाजन इस तरह होना चाहिए कि न तो वह दर्शक को देर तक जड़ बनाये रक्खे, और न उसे बार बार आकाश से पृथ्वी पर पटके। नाटक का प्रथम भाग दर्शकों को कथानक और पात्रों से परिचित करा दे तथा उनमें उत्सुकता, कौतूहल आदि भावों को जगाकर अभिनय में प्रदर्शित भावों के ग्रहण करने योग्य बना दे। और तब दूसरे भाग में उन्हें एकदम आकाश तक पहुँचा—भाव शुद्धि करा—फिर पृथ्वी पर ले आवे।

प्रस्तुत नाटक में यही चेष्टा की गई है। कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो दर्शक या पाठक ही बता सकेंगे। किन्तु इतना ज़रूर है कि दस-बारह व्यक्ति, दस-बारह दिन में, थोड़ा-थोड़ा सा समय दे कर, साधारण सामग्री, वेशभूषा आदि से इसे सफलता-पूर्वक अभिनीत कर सकेंगे। वेशभूषा के बारे में मैंने कोई निर्देश नहीं दिये, क्योंकि कथानक आधुनिक है; अपनी सहज बुद्धि से कोई भी निर्देशक यह समझ लेगा कि कौन से वेश उपयुक्त हैं। सिर्फ जहाँ प्रभाव के लिये किसी खास वेश की ज़रूरत समझी है, वहीं निर्देश कर दिया है। अभिनय की सफलता तो अभिनेताओं पर होती है, उनके वस्त्र आदि पर नहीं। दर्शकों को कथानक तथा अभिनेताओं [illegible] में अभिभूत करने हैं, [illegible] बात का [illegible] करने से [illegible] [illegible] है।

नित्यानंद वात्स्यायन

प्रस्तावना

(स्वर्ण रेखा का किनारा। संध्या। मोहन
और कमला खेल रहे हैं। मिट्टी
का घरौंदा बना है......)

मोहन— कमला, देखो तो यह घर तैयार हो गया कैसा अच्छा बना है।

कमला—उँह, इत्ता छोटा सा घर........

मोहन—तो यह लो, इधर और बढ़ा दें; अब तो हुआ न ?

कमला—और छत ?

मोहन—यह लो (एक पत्ता रख कर) छत भी तैयार है। अब यह घर नहीं, महल हो गया।

कमला—मेरा महल ! इसमें फूल भी तो लगाने चाहिएँ। बिना बगीचे के कहीं महल होता है ?

मोहन—ठीक कहती हो (फूल लगाता है) अब गद्दी भी चाहिए ? (एक पत्थर रख के) तुम्हारा सिंहासन !

कमला—और मुकुट ?

मोहन—राजतिलक होगा, तब न पहनोगी ? (फूल तोड़कर मुकुट बनाता है) अब बैठो। (कमला गद्दी पर बैठती है, मोहन मुकुट पहना देता है) अब तुम रानी बन गई।

कमला—तुम मंत्री बनाए जाते हो। करो सलाम !

मोहन—(सलाम करते हुए) रानी जी की क्या आज्ञा है ?

कमला—दरबान को बुलाओ। पर मोहन, दरबान कौन है?

(प्रकाश का प्रवेश)

मोहन—लो, प्रकाश आगया, यही है दरबान!

प्रकाश—(चिढ़ कर) मैं दरबान! और तुम?

कमला—मंत्री।

प्रकाश—बड़े आये हैं मंत्री बनने वाले! मैं जैसे इनका दरबान बनूँगा! अभी एक घूँसा जमाऊँ तो उलट जाँय। और बनेंगे मंत्री!

कमला—दरबान तो मोटा ताज़ा होता ही है! बाबूजी का दरबान देखो कितना मोटा है!

प्रकाश—और मंत्री ऐसा ही बुद्धू होता है न? और तुम रानी हो—रानी ऐसी होती है?

कमला—(मोहन से) मंत्री! यह दरबान नालायक है; इसको कान पकड़कर निकाल दो।

मोहन—(प्रकाश को धक्का देते हुए) हटो जी—रानी साहिबा का हुक्म है।

(प्रकाश मोहन को एक धक्का देकर गिरा देता है, फिर एक लात मारकर महल तोड़ देता है—झपटकर कमला के सिर से मुकुट छीन कर फेंक देता है, फिर हँसते हुए कहता है:—)

प्रकाश—कैसा राज उलट दिया!

मोहन—(उठ कर) तुम ने महल क्यों तोड़ा जी?

प्रकाश—क्यों?

कमला—(रुआँसी होकर) चलो मोहन......प्रकाश बड़ा खराब

है; इससे नहीं बोलेंगे। (उठकर मोहन का हाथ पकड़ लेती है)

प्रकाश—रानी साहबा ! राज लुट गया न ? देखी मेरी बहादुरी ? राज छीन लिया ! वाहरे मेरी ताकत !

मोहन—ताकत तो जानवरों में भी होती है—

प्रकाश—तुम तो कहोगे यही सच। है कुछ ताकत तुम में ? लो, मैं बैठता हूँ गद्दी पर—(बैठता है, मुकुट पहन लेता है) छीनो तो मुकुट या मुझे उतारो गद्दी से।

मोहन—आगे बढ़ता है। पर कमला रोक लेती है।

कमला—चलो मोहन ! राजा बने हैं तो राज करें अकेले। खेल खराब कर दिया तो समझते हैं बहादुर बन गये। दूसरे की चीज़ छीनना ही जैसे बहादुरी है। (मोहन को प्रायः खींचती हुई ले जाती है। प्रकाश उन्हें जाते देखता है; फिर खड़ा हो जाता है मुकुट उतार लेता है; कुछ देर बाद पत्थर को एक ठोकर मार कर उलट देता है; मोहन तथा कमला के गन्तव्य पथ की ओर देखता है; हाथ में लिये हुए मुकुट की ओर देखता है; फिर सोचता हुआ लज्जित सा खड़ा रह जाता है।)

पटाक्षेप

(फिर एक पर्दे पर मोटे अक्षरों से लिखा हुआ
सामने आता है—बारह वर्ष बाद)

पहला अंक

पहला दृश्य

(रायबहादुर जगदीशचन्द्र के घर का एक कमरा। बीच में मेज़ रखी है। उस पर किताबें बिखरी पड़ी हैं। दो तीन कुरसियाँ। एक ओर एक बड़ी सी खिड़की है।
कमला कुछ फूल लिये आती है। सजा कर उन्हें मेज़पर रखने लगती है और गाती है:—)

कमला—उठ, मनवाँ ! सावन आया रे !

सावन आया बादल लाया, रंग हरा छिटकाया रे !
भौंरा बोले हर अमराई, बूंद बरसती है सुखदाई,
हर दिल में खुशियाली छाई, तू क्यों है अलसाया रे !
उठ मनवाँ ! सावन आया रे !

रायबहादुर—(प्रवेश करके) यह क्या हो रहा है पगली ! तुझे शऊर आयेगा कि नहीं ?

[कमला चौंक कर चुप कर जाती है]

रायबहादुर—इतनी बड़ी हो गई पर बचपन न गया ! कितना समझाया तुझे कि अब पढ़, सब अल्हड़पन छोड़ दे किन्तु तुझे तो इस कान से सुनना है, उस कान से निकालना है। (कुर्सी पर बैठ जाते हैं)

कमला—मैंने क्या किया है बाबू जी ?

रायबहादुर—किया तो कुछ नहीं बेटी। मैं तो यही कहता हूँ कि तू अब बच्ची नहीं है यह सब उछल-कूद छोड़ कर अब गंभीर बन ! कल को शादी होगी तो ऐसा न हो कि सास-ससुर कहें कि माँ नहीं थी इसीलिये बाप ने बिगाड़ दिया। तू तो पढ़ी लिखी है, स्वयं समझ लेगी।

कमला—आप तो हरदम डाँटते रहते हैं बाबूजी ! मैं तो इतनी सीधी रहती हूँ कि........

रायबहादुर—कि !

कमला—पढ़ती हूँ तो आप कहते हैं जा के खेल ! खेल अकेले तो होता नहीं। अकेले सिर्फ़ गाया जा सकता है, सो गाती हूँ ! देखिये—आज ही मेरे गाने पर डाक्टर मोहन ने मुझे यह इनाम दिया है। (फूल दिखाना)

रायबहादुर—मोहन ! कब आया था वह ?

कमला—बाहर ही भेंट हुई थी। मैंने कहा भी, किन्तु भीतर नहीं आए। आपसे बड़ा डरते हैं। (कुर्सी की बाँह पर बैठ जाती है और रायबहादुर के कोट में एक फूल खोंस देती है) भला आपसे भी डरने की ज़रूरत है ?

रायबहादुर—मेरे सामने नहीं आता, नहीं तो......

कमला—नहीं तो क्या बाबू जी ?

रायबहादुर—कमला ! तुम अब बच्ची नहीं हो। मोहन भी लड़का नहीं है। अब उससे मिलना छोड़ दो। यह ठीक नहीं।

कमला—(कुर्सी से उठकर अलग खड़ी हो जाती है) क्यों ठीक नहीं, डाक्टर मोहन तो बड़े भले आदमी हैं !

रायबहादुर—भले बुरे का सवाल नहीं। लोगों में निन्दा होगी। फिर अगर मोहन दूसरी तरह का होता तो...

कमला—दूसरी तरह का कैसा ?

रायबहादुर—जो नहीं है उसके विषय में सोचना ही क्या ? उससे तेरी शादी नहीं हो सकती।

कमला—(पाँव पर दृष्टि गड़ाए) क्यों ?

रायबहादुर—वह गरीब है।

कमला—गरीब कैसे ? दो सौ रुपया महीना पाते हैं !

रायबहादुर—तो दो सौ से क्या होता है ? जानती है तेरी एक साड़ी की कीमत ही दो सौ से अधिक होगी ! (कमला चौंक कर साड़ी देखने लगती है)

कमला—बाप रे !

रायबहादुर—(हँस कर) और फिर वह हमारा नौकर है।

कमला—नौकर क्यों ? आपके यहाँ काम करते हैं इस लिए ? तो भैया भी नौकर हुए—वे भी तो काम करते हैं।

रायबहादुर—वह दूसरी बात है। खैर, मुझे बहस नहीं करनी। मोहन से तेरी शादी नहीं होगी। इसलिए उससे अधिक मिलना जुलना छोड़ दे।

कमला—नहीं करनी है मुझे शादी ! (पाँव पटकती हुई चली जाती है। रायबहादुर ऐनक हाथ में उठाए, ऊपर ही देखते हैं।)

रायबहादुर—क्या करूँ! तुझे दुखी नहीं करना चाहता, पर मोहन से शादी......असंभव है। (पेंसिल पटक कर उसे हटा ही दिया जाय तो अच्छा हो। लेकिन लड़का शरीफ़ है (ज़ोर से) कैलाश! (कैलास का प्रवेश—सूट बूट पहने)

कैलाश—आपने बुलाया बाबू जी!

रायबहादुर—हाँ! बैठो, तुमसे ज़रा ज़रूरी बातें करनी हैं।

(कैलाश बैठ जाता है)

रायबहादुर—अब तुम लड़के नहीं हो। इस लिए सभी बातों में तुम्हारी राय ले लेना आवश्यक है। सबसे पहला सवाल है कमला का।

कैलाश—क्या फिर कुछ ऊधम किया है उसने?

रायबहादुर—ऊधम तो नहीं। परन्तु अब वह बड़ी हो गई है। उसका विवाह कर ही देना चाहिए! तुम्हारी जान पहचान का कोई लड़का हो तो देखना। मैं नहीं चाहता कि उसके कोमल हृदय को किसी तरह का दुःख हो और इस काम में देर करने से हो सकता है कि उसे दुःख भुगतना पड़े।

कैलाश—सो कैसे बाबू जी?

रायबहादुर—मोहन तुम लोगों का बचपन का साथी है। अब भी आता जाता है। इसका प्रभाव कमला पर क्या पड़ेगा? अगर मोहन से उसकी शादी हो सकती तो अच्छा था। परन्तु मोहन के ढंग ही न्यारे हैं। जायदाद लुटा दी; और अब ग़रीबों का हिमायती बना है! कल को यहाँ की नौकरी छूट जाय तो पता चले ग़रीबी

किसे कहते हैं। मैं तो बहुत सहता हूँ—मेरे मित्र का लड़का है। परन्तु अपनी जड़ तो नहीं खुदवा सकता !

कैलाश—मैंने भी कई दफ़ा उससे कहा है कि अपना ध्यान प्रेक्टिस की तरफ़ लगावे या विलायत जाकर पढ़े। किन्तु नहीं, वह तो जब फ़ुर्सत पाता है, मज़दूरों में चला जाता है। न जाने उन्हें क्या क्या समझाता रहता है।

रायबहादुर—समझायगा क्या, उभाड़ता है। आज कल के लड़कों को न जाने क्या क्या सूझता है ! मार्क्स और समाजवाद हरदम ज़बान पर रहते हैं। यह तो समझते नहीं कि ख़याली पुलाव पकाने से ही संसार नहीं चलता। इसमें चाहिए प्रेक्टिकल काम—रचनात्मक और व्यावहारिक कार्यक्रम। मानता हूँ उसने स्कूल खोल दिया है, मज़दूरों के पढ़ाने लिखाने का प्रबन्ध कर दिया है; परन्तु समुद्र में एक बूँद की तरह उसका क्या मूल्य है ? केवल मज़दूरों का संगठन और मज़दूरी बढ़ाने की माँग ! क्या हड़ताल की धमकी देकर मज़दूरी बढ़ाना पैरासाइटिज़्म नहीं है ?

कैलाश—मज़दूरी तो मैंने स्वयं बढ़ा दी थी। अब भी आस-पास के कारख़ानों से अधिक ही मज़दूरी हम दे रहे हैं।

रायबहादुर—लेकिन देखो, यूनियन ने लिखा है कि मशीनों में परिवर्तन कर देने के कारण उत्पादन बहुत बढ़ गया है। मज़दूरी इसी हिसाब से बढ़ाई जानी चाहिए।

कैलाश—आप भी इसमें कुछ भी नाराज़ी नहीं करनी चाहिए ! आप विश्वास कीजिए कि अभी मज़दूरी नहीं बढ़ेगी ! मशीनों पर जो ख़र्च लगा

है, वह लौट तो आवे। और मोहन को भी समझा दीजिए। मेरी बात तो वह सुनता ही नहीं। आपका अदब करता है ज़रूर। संभव है आपकी बातों का उस पर कुछ प्रभाव पड़े।

रायबहादुर—हाँ, मैं भी वही सोच रहा था। कमला से अधिक न मिलने के लिये भी तो कह देना चाहिए। झूठी आशा को पल्लवित न होने देना ही बुद्धिमानी है।

कैलाश—जी हाँ, मुझे इस का ध्यान भी न था। वरना मैं पहले ही रोक देता। कमला को भी तो आपने दुलार करके बिगाड़ दिया है। मेरी तो बात ही नहीं सुनती।

रायबहादुर—(मुस्करा कर) पगली है। उस पर सख़्ती करूँ भी कैसे? माँ नहीं है। हाँ, बहू को बुला लो। रहेगी तो कमला को भी अकेलेपन का बोध न होगा और कुछ नियंत्रण भी हो जायगा।

कैलाश—(सिर झुका कर) अच्छी बात है।

रायबहादुर—अभी लिख दो, देरी की ज़रूरत नहीं।

कैलाश—(उठते हुए) अभी......   (जाता है)

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

[गोपाल का घर । गोपाल की स्त्री खटिया पर लेटी हुई है, पायताने रत्ना बैठी है, गोपाल पीठ पीछे हाथ रखे इधर उधर टहल रहा है।]

रत्ना—भैया ! डाक्टर साहब अभी तक नहीं आये ?

गोपाल—तो मैं क्या करूँ ? उनको जब फुरसत होगी तभी न आवेंगे !

रत्ना—ऐसा न कहो भैया ! वे भले आदमी हैं, सुनते ही तुरन्त चले आवेंगे।

गोपाल—तो मैंने कब कहा कि भले नहीं हैं ? परन्तु वे किसी को जान तो नहीं दे सकते ! किस्मत में ही भुगतना लिखा है तो डाक्टर साहब क्या करेंगे ?

गोमती—पानी ! (रत्ना उठकर पानी पिलाती है। गोपाल खड़ा होकर देखता है)

गोपाल—अब कैसा जी है ?

गोमती—अच्छा ही है। तुम जाओ देर होती होगी। कल भी देर हो गई थी।

गोपाल—किस्मत में देर लिखी होगी तो जरूरी देर होगी।

गोमती—तो मैं क्या करूँ ? आज कुछ कर बीमार पड़ी [illegible]। तुम जाओ। [illegible] है, [illegible]......

गोपाल—[illegible] क्या [illegible] नहीं [illegible] ? [illegible] जाता है,

न जायगी तो नौकरी छूट जायगी। हम जो उसकी कमाई के बारह रुपये खाते हैं, वे न मिलेंगे। हा हा हा! रत्ना! यही न तुम्हारा भाई है, तुम्हारी कमाई से जीने वाला! डूब मरने को भी जगह नहीं मिलती मुझे!

रत्ना—भैया! आज तुम्हें क्या हो गया है?

गोपाल – मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं तो मस्त हूँ, खाता पीता मौज करता हूँ। हुआ तो तुम लोगों को है—अक्ल पर पाला पड़ गया है जो मुझ जैसे निखट्टू का इतना आदर करती हो!

रोगिणी—हाय! मैं मर जाऊँ तो तुम लोगों को आराम मिले।

गोपाल—हाँ! हम लोगों को आराम मिले—आराम!

रत्ना—भैया-भैया! यह क्या बकते हो? भाभी तू ही तो चुप कर जा! (रोगिणी रोने लगती है। रत्ना आकर उसके सिरहाने बैठ जाती है, और गोद में सिर रख लेती है।) तुम जाओ भैया! कड़वी बातें कह कर भाभी का दिल न दुखाओ। आगे ही बहुत सह रही हैं।

गोपाल—(मुँह फेर कर आँसू पोंछता है) सिवाय सताने के मैंने और कुछ किया है बहन! कितनी साध लेकर आई थी, और यहाँ मिला क्या? दुःख, सुबह से शाम तक मेहनत और यह बीमारी...

रत्ना—यह तो जीवन है भैया तुम क्या करते?

गोपाल—मैं क्या करता? ऐसी हालत में मेरा ब्याह करना ही भूल थी—(रोगिणी अचानक कराह उठती है। रत्ना और गोपाल उधर झुक जाते हैं)

रत्ना—पानी दो, बेहोश होगई मालुम होती है। (गोपाल पानी देता है, रत्ना मुँह पर छींट देती है।)

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—देरी होगई गोपाल। क्या हाल है ? (गोपाल एक ओर हट जाता है, रत्ना रोगिणी का सर तकिये पर रख कर उठ जाती है। मोहन देखता है)

गोपाल—मोहन बाबू! बचाइये इसे, जैसे हो—अब यह दुःख नहीं देखा जाता।

मोहन—घबराओ नहीं, अच्छी हो जायगी।

गोपाल—(दीनता से) जो कहियेगा सेवा में हाज़िर करूँगा लेकिन यह दुःख छुड़ाइये...

मोहन—(गोपाल के कन्धे पर हाथ रख) गोपाल ! इस तरह कातर होगे तो काम कैसे चलेगा ? धीरज रखो।

रत्ना—अब कैसी हालत है डाक्टर बाबू ?

मोहन—अभी तो वैसी ही है। कमज़ोरी अधिक है—प्राणों के लिये

गोपाल—नहीं डाक्टर बाबू! अभी भीख माँगने की नौबत नहीं आई है।

मोहन—भीख मत कहो भाई! मेरे साथ यह अन्याय मत करो।

रत्ना—आप उनकी बातों का ख़याल न करें, डाक्टर बाबू! उनका मिजाज बिगड़ा हुआ है।

मोहन—माँ कहाँ है रत्ना?

रत्ना—उनको गठिया ने धर लिया है। चल फिर नहीं सकतीं।

मोहन—ओह! तब इनकी सेवा कौन करेगा?

गोपाल—देखते हैं न डाक्टर बाबू! लड़का होता है माँ की सेवा के लिये लेकिन मैंने माँ को टहलुनी बना दिया। भाई होता है बहन की रक्षा के लिये लेकिन मैं बहन की ही कमाई खाता हूँ। पति होता है स्त्री के पोषण के लिये परन्तु यहाँ यह पड़ी है और मैं चला जाऊँगा निश्चिन्त होकर! यह जीना भी कोई जीना है? इससे तो मौत ही भली।

मोहन—(कागज़ कलम निकाल कर कुछ लिखता है) लो, मैं सर्टिफ़िकेट देता हूँ इनकी बीमारी का। तुम छुट्टी लेलो चार-पाँच दिन की। तब तक परीक्षा समाप्त हो जायगी और रत्ना को अवकाश मिल जायगा। कुछ फल इत्यादि मैं भेज दूँगा। कल अगर मैं बीमार पड़ूँ तो क्या तुम सहायता नहीं करोगे?

गोपाल—डाक्टर बाबू!

मोहन—जाओ, छुट्टी लेकर जल्दी चले आना। तब तक रत्ना है ही। अभी कोई चिन्ता की बात नहीं है। मैं दवा भी भेज दूँगा—माँ की भी। शाम को फिर आऊँगा। (जाता है)

रत्ना—आदमी नहीं हैं, देवता हैं ।

गोपाल—सच कहती हो रत्ना ! इनके बिना तो हमारा ठिकाना न रहता । लेकिन अपना भाग्य फूटा हो तो कोई क्या करे । इतनी दवायें दीं परन्तु आराम तो होता नहीं ।

रत्ना—तो बबड़ाने से थोड़े हो जायगा ? मर्ज धीरे-धीरे काबू में आता है (पंखा करती है ।)

गोपाल—तो मैं जाता हूँ ।

रत्ना—अच्छा । (गोपाल जाता है ।)

पटाक्षेप

तीसरा दृश्य

[कैलाश बैठे हैं । मेज पर कागज़पत्र के ढेर...
गोपाल प्रवेश कर सलाम करता है]

गोपाल—हुजूर !

कैलाश—क्या है ? काम पर नहीं गये ?

गोपाल—हुजूर ! इसी लिये आया था । घर पर बीमारी है......

कैलाश—तो डाक्टर के यहाँ जाते; यहाँ क्यों आये ?

गोपाल—जी, वहाँ तो गया था, पर—

कैलाश—पर क्या ? क्या डाक्टर ने ध्यान नहीं दिया ? हमारा बचपन का साथी है तो क्या हुआ ? जब रुपया लेता है तो काम करना ही होगा ।

गोपाल—काम तो उनसे अच्छा दूसरा क्या करेगा हुजूर ! उनकी

शिकायत हम लोग नहीं कर सकते ! अभी यही कहने आया था कि दो चार दिन की छुट्टी मिले। औरत बीमार है, देख भाल की ज़रूरत है।

कैलाश—तुम लोग हरदम ऐसा ही बहाना करते हो। घर बैठे तनख़्वाह लेने का ढंग है।

गोपाल—यह देख लिया जाय, पता लग जायगा कि मैं सच कहता हूँ या झूठ (सर्टिफ़िकेट देता है)

कैलाश—(देख कर) घर पर और कोई नहीं है क्या ?

गोपाल—माँ है, वह भी बीमार है।

कैलाश—और ?

गोपाल—बहन है, लेकिन वह यहाँ स्कूल में अध्यापिका है।

कैलाश—तो उसे कहते छुट्टी लेने के लिये। औरतों की सेवा तो औरतें ही करेंगी।

गोपाल—उसे छुट्टी नहीं मिली। स्कूल में परीक्षा है।

कैलाश—तो तुम्हें ही क्यों छुट्टी मिले ? क्या हमारे कारख़ाने में काम बन्द है ?

गोपाल—जी नहीं। पर यहाँ का काम तो दूसरा भी कर लेगा।

कैलाश—अच्छी बात है। अपने काम पर दूसरा आदमी रख जाओ। तुम्हें छुट्टी मिल जायगी।

गोपाल—बदले का आदमी कहाँ खोजूँगा हुज़ूर ? छुट्टी मिल जाती तो बड़ी कृपा होती।

कैलाश—ऐसे नहीं मिलेगी। कह दिया, बदले में आदमी रख जाओ तो छुट्टी मिल सकती है।

गोपाल—बिना तनखाह के ही छुट्टी देदें।

कैलाश—काम छोड़ जाओ, कोई मना करता है ?

गोपाल—हुजूर, बेचारी औरत मर जायगी।

कैलाश—मैंने उसका ठेका लिया है ? तुम काम करते हो, तनखाह लेते हो। न करना हो—न करो। लेकिन फिजूल का रोना मुझे पसन्द नहीं। जाओ काम पर—देर करोगे तो जुर्माना होगा।

गोपाल—तो छुट्टी नहीं मिलेगी ?

कैलाश—नहीं।

गोपाल—अच्छी बात है। बेचारी औरत मरती है तो भी आपको क्या ! न दें छुट्टी।

कैलाश—मुझे क्या ? जाओ, व्यर्थ बकवाद न करो।

(गोपाल धीरे धीरे जाता है।)

कैलाश—(अपने आपही) मोहन से इतना कहा कि फिजूल सर्टिफ़िकेट न दिया करो पर सुनता ही नहीं। छुट्टी देते देते नाकों दम आगया। कहाँ तक छुट्टी दूँ ? न काम करना हो तो न करे। हराम का खाने की इतनी कोशिश क्यों ? (रायबहादुर का प्रवेश)

रायबहादुर—क्या बात है, कैलाश !

कैलाश—(खड़ा होकर दूसरी कुर्सी ले लेता है, रायबहादुर बैठते हैं) कुछ नहीं बाबू जी !

रायबहादुर—(सर्टिफिकेट देख कर) यह क्या है ?

कैलाश—छुट्टी के लिये आया था। गोपाल नाम का आदमी है—शिफ्ट रैंग मैन । स्त्री को बीमारी कहता है। डाक्टर मोहन ने भी

लिख दिया है। पर घर में माँ है, बहन है, क्या वे काफ़ी नहीं ?

रायबहादुर—गोपाल, गोपाल ? हाँ याद आ गया। अच्छा आदमी है।

कैलाश—पक्का बदमाश है। मज़दूरों का संगठन करने में लगा रहता है। एक न एक फ़साद खड़ा करता ही रहता है।

रायबहादुर—ऐसा ? ख़ैर, छुट्टी दे दी ? काम में तो हर्ज होगा ही।

कैलाश—नहीं दी छुट्टी। मैंने कहा कि बदले का आदमी रख जाओ।

रायबहादुर—दे देते छुट्टी। जैसा कि कहते हो, मज़दूरों में प्रभाव है, तो उसे मिलाये ही रखना चाहिए।

कैलाश—बाबू जी, डरने से काम थोड़े ही चलेगा ? कहाँ तक हम डरेंगे ? सख़्ती की ज़रूरत है तभी ये लोग मानेंगे। मोहन को भी कह देना चाहिए कि व्यर्थ इन लोगों की बातों में न पड़े।

रायबहादुर—हाँ, सीधा लड़का है। बहकाने में आ जाता है।

कैलाश—सीधा क्या, पूरा बना हुआ है। वही तो मजदूरों को नये नये पैम्फलेट, समाजवाद, संगठन और इसी तरह की भड़काने वाली बातें सुनाता रहता है। अगर हमारे कारख़ाने में कुछ भी गड़बड़ हुई तो सब उसी की ज़िम्मेवारी होगी।

रायबहादुर—ऐसा ? मुझे नहीं मालूम था यह सब !

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—प्रणाम, रायबहादुर !

कैलाश—आप ही का ज़िक्र हो रहा था, डाक्टर मोहन !

मोहन—(हँस कर) थिंक आफ़ द डेविल एंड ही इज़ देअर (Think of the Devil and he is there) है न ?

रायबहादुर—मोहन, सुनता हूँ तुम मज़दूरों में समाजवाद फैला रहे हो।

मोहन—मैं ? मैं कैसे फैलाऊँगा ? हाँ परिस्थितियाँ ही फैला रही हैं।

कैलाश—और वे परिस्थितियाँ आप ही पैदा करते हैं। हैं न डाक्टर साहब ?

मोहन—सो कैसे ? अगर आप बुरा न मानें कैलाश बाबू, तो मुझे कहना होगा कि आपही वे परिस्थितियाँ पैदा कर रहे हैं।

रायबहादुर—क्या हम अपनी ही जड़ खोद फेंकना चाहते हैं ?

मोहन—सो मैं क्या जानूँ ! परन्तु कड़ाई करने से मज़दूर काबू के बाहर होते हैं। यह हर.जगह का अनुभव है। इधर कुछ दिनों से सख़्ती अधिक हो रही है।

कैलाश—जब मज़दूरी देते हैं, तो काम भी पूरा लेंगे, इसे अगर आप सख़्ती कहें तो कहें। मैं तो इसे न्याय ही मानता हूँ।

रायबहादुर—बहस की ज़रूरत नहीं है बेटा। और मोहन, तुमसे भी यही कहना है कि व्यर्थ के झमेलों में पड़कर क्यों जीवन नष्ट करते हो ?

मोहन—जीवन सफल करता हूँ कहिये !

रायबहादुर—मैंने ज़माना देखा है। मेरी बात मानो। यह सब

जवानी की खुमारी है। इसे छोड़ दो। अपने काम में तरक्की करते जाओ। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि विलायत चले जाओ, खर्चा मैं दूँगा। अपनी संपत्ति तो तुम दान ही कर चुके।

मोहन—बिना विलायत गये भी मेरा काम चल सकता है रायबहादुर। ख़ैर, जाने दीजिये इन बातों को। मैं आया था आपसे कुछ फ़रियाद करने।

रायबहादुर—कहो।

मोहन—दो एक इंडोर वार्ड्स खोल देते तो अच्छा रहता। सिर्फ़ डिस्पेंसरी पर्याप्त नहीं होती।

रायबहादुर—देखा जायगा मोहन, अभी मुश्किल है। फिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अस्पताल है ही। एक वार्ड का का खर्च हम देते हैं। वहीं पर मज़दूर भरती हो सकते हैं।

मोहन—और खेल के लिये मैदान? आपने स्कूलनिरीक्षण के दिन ज़मीन देने को कहा था।

कैलाश—खेल! मज़दूर क्या खेलेंगे! उन्हें चाहिये जुआ।

मोहन—क्योंकि और कुछ खेलने लायक आपने रखा नहीं। साधन दीजियेगा तो दिलचस्पी बढ़ेगी।

रायबहादुर—सोचूँगा मोहन। लेकिन तुम इन कामों में न पड़ो। जानते हो, तुम्हारे बाप ने कभी मेरी बात नहीं टाली थी। और तुम....

मोहन—कोशिश तो मैं भी करता हूँ, रायबहादुर! परन्तु आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। जिस बात को मैं सही मानता हूँ उसे करने के लिये आप भी मना नहीं करेंगे। ख़ैर, तो आप सोचियेगा।

रायबहादुर—हाँ, ज़रूर। ज़रा तुम भी सोचना।

मोहन—(नमस्कार करते हुए) तो आपका बहुमूल्य समय बर्बाद नहीं करूँगा। (जाता है)

कैलाश—ज़रा पूछते कि इस समय डिस्पेन्सरी छोड़ कर कहाँ घूम रहे हैं ये हज़रत।

रायबहादुर—जाने भी दो। (अपनी ओर रजिस्टर खींच लेते हैं)

पर्दा गिरता है

चौथा दृश्य

[कमला का कमरा। कमला कुर्सी पर और रत्ना नीचे बैठी है। मेज पर फूलदान में फूल रक्खे हैं।]

कमला—तो उन्होंने छुट्टी नहीं दी ?

रत्ना—नहीं।

कमला—तब ? यह तो अन्याय हुआ।

रत्ना—हम लोग कर ही क्या सकते हैं ? ग़रीब हैं, सब सहना ही होगा। लेकिन क्या भगवान् भी चुप बैठे रहेंगे ?

कमला—रत्ना, क्या मेरे भाई के विषय में कह रही हो ?

रत्ना—क्षमा करें, दुःखी हृदय से निकली बातों का ध्यान न करें।

कमला—छुट्टी मैं दिला दूँगी। तीन रोज़ में तो तुम्हें ही छुट्टी हो जायगी।

रत्ना—मैं यही कहने आई थी कि कल से मैं स्कूल न जा सकूँगी।

कमला—क्यों ?

रत्ना—भाभी को अकेले नहीं छोड़ सकती। नौकरी जायगी तो फिर मिल भी सकती है। पर भाभी......

कमला—तो क्या ऐसी ख़राब हालत है ?

रत्ना—मुझे तो मालूम पड़ता है कि नहीं बचेगी।

कमला—अच्छा, तुम घर पर ही रहो। तुम्हारे बदले मैं ही चली जाऊँगी। व्यर्थ जी मत छोटा करो।

रत्ना—(प्रणाम करती हुई) भगवान आपको सुखी रखें। आप से यही उम्मीद करके आई थी।

कमला—और किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो कहो। इलाज ठीक से हो रहा है न ?

रत्ना—हाँ, डाक्टर बाबू बहुत दया रखते हैं। हम ग़रीबों को तो उनका और आपका ही आसरा है। मालिक तो आज कल बहुत कड़े हो गये हैं।

कमला—डाक्टर बाबू को तुम लोग बहुत मानती हो न। कोई उनकी शिकायत भी करता है ?

रत्ना—नहीं। ऐसे देवता आदमी की शिकायत भला कौन करेगा। वे हम लोगों को पढ़ाते हैं, सिखाते हैं, मानों हम लोग उन्हीं के बराबर हों। कभी किसी को घृणा करते उन्हें नहीं देखा।

कमला—मैं भी जानती हूँ। तभी तो...

रत्ना—तभी तो ?

कमला—कुछ नहीं। मैं तो जानती थी कि वे ऐसे आदमी हैं। मैंने ही तो बाबूजी से कहकर उन्हें यहाँ रखाया था। भैया तो दूसरे को रखना चाहते थे।

रत्ना—मोहन बाबू का बस चले तो वे हम लोगों की ग़रीबी मिटा कर ही दम लें।

कमला—इसी में तो जायदाद फूँक दी! लेकिन ग़रीबी ऐसे दूर नहीं होगी। वे कहते हैं कि समाज की व्यवस्था ही बदल देने पर ग़रीबी मिट सकती है। भला यह भी कभी होगा?

रत्ना—वे कहते हैं तो ज़रूर होगा। वे ग़लत नहीं कह सकते।

कमला—क्यों? क्या वे देवता हैं जो ग़लत नहीं कह सकते?

रत्ना—सो तो मैं नहीं जानती। पर उनकी हर बात मान सकती हूँ।

कमला—(कुर्सी से उठकर इधर-उधर टहलने लगती है) रत्ना, डाक्टर बाबू क्या तुम्हारे यहाँ रोज़ जाते हैं?

रत्ना—हाँ, दोनों समय। बहुत दया करते हैं।

कमला—इस बीमारी से पहले भी? (रत्ना के सामने रुक कर उसी की ओर देखती है)

रत्ना—भैया से उनकी काफ़ी दोस्ती है। अक्सर हमारे यहाँ आते हैं। कभी कभी आठ दस बजे तक बहस करते रह जाते हैं।

कमला—हूँ! (फिर टहलने लगती है) सुना है वे तुम लोगों को नर्सिंग सिखाते हैं?

रत्ना—हाँ, कुछ औरतों और लड़कियों को सिखाते हैं।

कमला—तुम भी सीखती हो?

रत्ना—हाँ। वे कहते थे कि औरतों को ज़रूर सीखना चाहिए।

कमला—हूँ! (ओंठ दाब लेती हैं)

(कैलाश का प्रवेश । रत्ना खड़ी हो घूँघट काढ़ लेती है)

कैलाश—कमला ! यहाँ क्या कर रही हो ?

कमला—कौन, भैया ?

कैलाश—हाँ, (रत्ना की ओर देख) यह कौन है ?

कमला—तुम्हारे एक मज़दूर की बहन ।

कैलाश—किस की ?

कमला—(अनिच्छा पूर्वक) गोपाल नामका कोई है, उसी की बहन है । भाभी बीमार है । शायद तुमने गोपाल को छुट्टी नहीं दी । इसी से फ़रियाद लेकर आई है । (कमला के स्वर परिवर्तन से रत्ना चौंक कर उसकी ओर देखती है—फिर सिर झुका लेती है)

कैलाश—तो क्या तुम छुट्टी दोगी ? यह तो है ही । क्या एक रोगी की सेवा नहीं कर सकती ? (रत्ना से) क्यों जी ? क्या हुआ है उसे ?

रत्ना—खांसी । डाक्टर बाबू कहते थे कि......

कैलाश—खांसी ! इसी लिये छुट्टी चाहिये ? डाक्टर दवा तो देता है न ? फिर ?

कमला—बीमारी कड़ी है, शायद इसी लिये......

कैलाश—खाँसी ही तो है न ?

रत्ना—डाक्टर बाबू कहते थे कि तपेदिक हो गया है ।

कैलाश—तपेदिक ! वह तो छूटने वाली बीमारी नहीं है । उस में छुट्टी क्या करेगी ? उसे नैहर भेज दो ।

रत्ना—इतने नृशंस हम नहीं हैं जो बीमारी में साथ न दें ।

कैलाश—तो फिर छुट्टी छुट्टी क्यों चिल्लाती हो ?

रत्ना—ग़लती हुई, माफ करेंगे। जो ऐसा जानती तो न आती। मैंने समझा था कि मालकिन दया करेंगी।

कमला—मैंने तो कहा—छुट्टी मिल जायगी।

रत्ना—आपकी कृपा है।

कैलाश—मैं डाक्टर से भी कह दूँगा, ज़रा ठीक से इलाज करें।

रत्ना—वे इलाज ठीक करते हैं। उसमें कोई कसर नहीं; रोज़ देख जाते हैं।

कैलाश—क्यों नहीं देखेंगे ! (ज़रा हँसकर) तुम्हारी भाभी है न ?

रत्ना—(ज़रा क्रोध से) जी हाँ ! (कमला की ओर मुड़ कर) तो मैं जाऊँ ?

कमला—जाओ। (रत्ना धीरगति से चली जाती है)

कैलाश—बड़ी घमंडी मालूम होती है। लेकिन है ज़रा चालाक।

कमला—नहीं, स्कूल में अध्यापिका है।

कैलाश—तभी तो। इन छोटी जात वालों को ज़रा सा भी अधिकार मिलता है तो मारे गर्व के ज़मीन पर पाँव नहीं रखते।

कमला—हटाओ सब फिज़ूल बातें। क्या कह रहे थे ?

कैलाश—कह रहा था कि चल, बाबू जी ने बुलाया है।

कमला—क्यों ?

कैलाश—कोई आये हैं। (हँस पड़ता है)

कमला—(लजाकर गुस्से से) जाओ नहीं जाऊँगी मैं।

कैलाश—बाबू जी बिगड़ेंगे।

कमला—तो बिगड़ें। मैं क्या बाज़ार का सौदा हूँ जो लोग देखेंगे। मुझे यह सब पसन्द नहीं।

कैलाश—तो जाने में क्या हर्ज है ?

कमला—नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी।

(मेज़ पर से फूलदान से फूल नोचने लगती है)

कैलाश—हमें तो फूल मिलते नहीं। तू रोज़ कहाँ से ले आती है ?

कमला—डाक्टर मोहन ने दिये थे। (झट फूलदान छोड़ देती है)

कैलाश—कमला ! मैंने तुझे मना किया था कि मोहन से व्यर्थ मिलना जुलना छोड़ दे। वह अब नौकर है। उससे बराबरी का सलूक नहीं हो सकता।

कमला—तो भैया, तुम भी नौकर हुए।

कैलाश—मैं तो काम सीख रहा हूँ।

कमला—अच्छा मुझे तंग न करो।

कैलाश—कहता था न कि पढ़ लिख कर लड़कियों का दिमाग़ ख़राब हो जाता है।

कमला—मेरा दिमाग़ ख़राब ही सही। लेकिन भाभी तो पढ़ी लिखी नहीं हैं। उन पर क्यों बिगड़े रहते हो ? बुलाते क्यों नहीं ?

कैलाश—तो तू नहीं जायगी ?

कमला—नहीं।

कैलाश—तो जाता हूँ। बाबू जी से कह दूँगा नहीं आती। (जाता है। कमला इधर उधर घूमती है। फिर नीचे गिरे हुए फूलों की पंखुड़ियाँ बीनने लगती है)　　　　[पर्दा गिरता है]

पाँचवाँ दृश्य

[गोपाल का घर। रत्ना और डाक्टर मोहन]

रत्ना—तो बीमारी रुक गई है ?

मोहन—हाँ, अब सिर्फ़ आराम की ज़रूरत है। एक दम शारीरिक मानसिक आराम और जितना पचा सके उतना पुष्टि-कर आहार।

रत्ना—कोई ख़तरा तो नहीं है ?

मोहन—ख़तरा तो रहता ही है रत्ना ! पर अगर बताये अनुसार चलो तो अभी तुरंत कोई ख़तरा नहीं है। अभी बरसों जी सकती है। लेकिन खान-पान की गड़बड़ी या मानसिक दुःख हो तो फिर हालत बिगड़ सकती है। गोपाल नहीं आया अभी तक ?

रत्ना—जी नहीं। आज तो दोपहर को गए हैं; अभी कुछ देर में आते ही होंगे। बैठिए, चाय बना दूँ।

मोहन—नहीं रत्ना, रहने दो। मुझे अभी रायबहादुर के यहाँ जाना है !

रत्ना—(मुस्कराकर) तब कैसे रुक सकते हैं ?

मोहन—क्यों ?

रत्ना—सो आप ही जानिये।

मोहन—आज तुम यह पहेली सी क्या कह रही हो ?

रत्ना—(हँस पड़ती है) डाक्टर बाबू ! हम औरतों से यह सब बातें नहीं छिपतीं।

मोहन—कौन सब बातें ? और तुम औरत कब-से हुई ! मैं तो अभी तक लड़की ही समझता था।

रत्ना—लड़की तो बचपन से ही औरत होती है डाक्टर बाबू! और औरतें जिसकी क़दर करती हैं, उसकी हर बात पर ध्यान रखती हैं, इसीसे उनसे कोई बात छिपती नहीं। और मालकिन भी......

मोहन—क्या ?

रत्ना—आप जाइये, नहीं तो बिगड़ उठेंगी। आप यहाँ जो रह जाते हैं, सो भी उन्हें बुरा लगता है।

मोहन—इस में बुरा लगने की क्या बात है। मेरा कर्तव्य है, मैं करता हूँ, और करता रहूँगा।

(जाता है)

रत्ना—(स्वगत) और मेरा कर्तव्य ? मुझे कौन बतायेगा (प्रगट) छिः, क्या सोचने लग जाती हूँ! (इधर उधर टहलती है। फिर खिड़की के पास खड़ी हो जाती है। धीरे-धीरे गाने लगती है)

पपीहा! पिया, पिया, मत बोलो!
परदेसी पंछी! तुम आते,
वन वन गीत प्रेम के गाते
क्या जानो प्रेमिक के नाते
पहले प्रेमिक होलो—पपीहा! पिया पिया......
आज विरह के गीत बनाते
आँसू हैं रह रह बह जाते।
स्मृति कण केवल पीर जगाते।
पहले विस्मृति दे लो! पपीहा पिया पिया.......

(गाना समाप्त होने के कुछ पहले ही कैलाश आता है। किवाड़ के

पास खड़ा होकर गाना सुनने लगता है। गाना समाप्त होने पर रत्ना खिड़की से बाहर देखती रहती है)

कैलाश—वाह !

रत्ना—(चौंक कर) कौन ?

कैलाश—मैं, कैलाशचन्द्र ।

रत्ना—(जल्दी से सिर ढाँक कर) आप ? आप यहाँ कहाँ ?

कैलाश—क्या यहाँ आना इतना कठिन है ?

रत्ना—आपने क्यों तकलीफ़ की ? भैया से काम था तो वहीं बुला लेते ।

कैलाश—मैं टहलता हुआ आया था। यहाँ से गुज़रा तो सोचा कि देखता चलूँ—शायद मोहन हो। सुना है अक्सर यहीं रहते हैं।

रत्ना—भाभी को देखने आये थे। चले गये हैं।

कैलाश—फिर तुम्हारा गाना सुना तो रुक गया। गोपाल कहाँ है ?

रत्ना—अभी तक नहीं लौटे हैं। डाक्टर बाबू आप ही की ओर गये हैं। उनसे काम हो तो......

कैलाश—तुम तो ऐसे बात करती हो जैसे कि मुझे यहाँ से निकालना चाहती हो।

रत्ना—हम ग़रीबों के यहाँ आप को क्या काम है ?

कैलाश—तुम ग़रीब क्यों हो ? तुम्हें तो रानी बनना चाहिए था।

रत्ना—हम ग़रीब ही अच्छे हैं ?

कैलाश—ग़रीबी का इलाज तो तुम्हारे हाथ है। कहो तो गोपाल की तनख़्वाह दूनी कर दूँ।

रत्ना—यह उन्हीं से कहियेगा।

कैलाश—उनसे कहने की क्या ज़रूरत है ? तुम्हीं कह दो ।

रत्ना—(क्रोध से) हम मुफ़्त का पैसा नहीं लेते।

कैलाश—मोहन से भी ?

रत्ना—(क्रोध से) आप जाइये यहाँ से।

कैलाश—जानती हो; चाहूँ तो मोहन को कल ही नौकरी से निकाल दूँ।

रत्ना—जो मन में आए कीजिये। मुझे सुनाने की ज़रूरत नहीं। जाते हैं, या भैया को बुलाऊँ ?

कैलाश—उसके पास है क्या ? फक्कड़ है, फक्कड़ ! और मेरे पास है रुपया—जितना चाहो ।

रत्ना—निकल जाइये मेरे घर से।

कैलाश—जानती हो, मैं कौन हूँ, चाहूँ तो तुम सब को मिट्टी में मिला दूँ। गोपाल—मोहन—तुम—सबको । भूलो मत ।

रत्ना—कैलाश बाबू ! अभी गरीबों की शक्ति से आपका परिचय नहीं हुआ। उसे मत छेड़िये; वरना जलकर भस्म हो जाइयेगा।

कैलाश—देख लूँगा........(जाता है)

(रत्ना क्रोध से काँपती खड़ी रह जाती है।

कुछ देर में गोपाल का प्रवेश)

गोपाल—(रत्ना को देख कर) रत्ना क्या हो गया तुम्हें ?

रत्ना—तुम आ गए भैया ?

गोपाल—बात क्या है ? कोई आया था क्या ?

रत्ना—हाँ।

गोपाल—कौन ?

रत्ना—कैलाश बाबू। (गोपाल चौंकता है, फिर रत्ना के कंधे पर हाथ रख कर कठोर स्वर में पूछता है)

गोपाल—क्यों आया था वह, क्या कहता था ?

रत्ना—तुम्हारी तनख़ाह दूनी कर देगा।

गोपाल—(दाँत पीस कर) मारा नहीं तूने उसे ? बोल !

रत्ना—मैं क्या करती ? जो मन में आया बक गई।

गोपाल—और क्या कहता था ? आज खून पीलूँगा उसका। बदमाश नीच कहीं का !

रत्ना—भैया ! क्या हम ग़रीबों की इज्ज़त भी नहीं ? जो मन में आए कह कर लोग हमें अपमानित कर सकते हैं ! भगवान् इसे कैसे सहते हैं ?

गोपाल—भगवान् ! भगवान् भी ग़रीबों के नहीं होते बहन ! अमीरों के सुगन्धित भोग खाना सीख गये हैं। ग़रीबों की सूखी पूजा कैसे ग्रहण करेंगे ?

रत्ना—मैं समझती थी......

गोपाल—कुछ समझने की ज़रूरत नहीं बहन ! अगर फिर कभी उसको इस ओर नज़र करते देखा तो जान मार कर ही दम लूँगा। रुपये का नशा चढ़ गया है ! चल भीतर...　　　　(जाते हैं)

पर्दा गिरता है

छठा दृश्य

(रायबहादुर के घर में कमला का कमरा। कमला खिड़की के पास खड़ी है। एक ओर मेज पर हार्मोनियम रखा है एक मेज पर फूल सजे हैं। कुछ देर बाद कमला इधर उधर टहलती है)

कमला—(स्वगत) दिन भी बीत गया। (हार्मोनियम के पास बैठ जाती है) नहीं आना था, तो कहा क्यों ? (रीड्स पर धीरे धीरे उंगलियाँ फेरने लगती है...) नहीं आए—न आयें......मुझे क्या ? (धीरे धीरे गुनगुनाने लगती है—फिर गाने लगती है।)

आओ, जीवन आओ !
सुना, क्षीर का कोई सागर,
सुना अमिय की कोई गागर
रहने दो इनको, धरती पर
काले बादल आओ—आओ ! जीवन......
सोने का फागुन मतवाला,
चाँदी का आश्विन उजियाला
घास कास में कहाँ अटेंगे
काले सावन आओ ! आओ ! जीवन आओ !
आओ ! आओ ! आओ !

(गाना समाप्त होते होते मोहन का प्रवेश। कमला गाना समाप्त कर रीड्स पर सिर रख ध्यानमग्न हो जाती है। मोहन धीरे से पीछे से आकर उसे एक फूलों की माला पहना देता है। कमला चौंक कर पूछती है।)

कमला—कौन !

मोहन—किसे बुला रहीं थीं कमला ?

कमला—आप को तो नहीं बुला रही थी, आप क्यों आये ?

मोहन—तो चला जाऊँ ?

कमला—जाना हो जाएँ, मुझे क्या ? मेरे हुक्म के बन्दे थोड़े ही हैं, आप !

मोहन—तुम इतना सुन्दर गाती हो यह आज ही पता लगा, कमला !

कमला—(खड़ी हो जाती है) अच्छा ! तो आप छिप छिप कर गाना सुनते हैं ! यह आदत आप में कब से पड़ी ?

मोहन—छिपकर न सुनूँ तो सुनना भी न मिले। आज कल तो तुम दिखाई ही नहीं देती हो।

कमला—(गंभीर होकर) बाबूजी ने मना कर दिया है।

मोहन—अच्छा ? (सोचता है) खैर, आज तुम नहीं आईं। देखो, मैंने कितने फूल रखे हैं तुम्हारे लिये।

कमला—(फूल लेकर) भैया कहते थे कि आप से फूल भी न लूँ (फूलों में मुँह छिपा कर) कितने सुन्दर हैं !

मोहन—पूजा का अधिकार मुझ से तो देवी भी नहीं छीन सकती।

कमला—(मुस्करा कर) खुशामदी ! इतनी देर कहाँ लगाई ?

मोहन—गोपाल के घर गया था।

कमला—ओह ! (एक क्षण रुक कर) आप वहाँ इतना क्यों जाते हैं ?

मोहन—क्यों जाता हूँ ? गोपाल गरीब है; इसी से यह प्रश्न पूछती हो ? किन्तु उस गरीब घर में कितनी मनुष्यता है, इसका परिचय मैं पा गया हूँ। गोपाल बहुत उन्नत विचार का आदमी है।

कमला—और रत्ना ?

मोहन—रत्ना ? उस बेचारी पर तो तुम्हें तरस आना चाहिये। तुम्हीं कल्पना करो—पुत्रहीना, पतिहीना नारी की क्या दशा होती है ? यह तो गोपाल है जो उसका इतना आदर करता है। उसे पढ़ा-लिखा कर नौकरी करने की राय भी तो गोपाल की थी; ताकि वह अपने दुख भूली रहे। जानती हो, कन्या पाठशाला की मुख्य स्तंभ वही है।

कमला—आपको बहुत मानती है न ?

मोहन—शायद। किन्तु उस घर में मुझे कोई पराया नहीं समझता। तुम भी एक दिन चलो न ? सबसे भेंट-मुलाकात कर आना।

कमला—मैं जाकर क्या करूँगी ? फिर......

मोहन—गरीब के घर जाने में हिचक नहीं होनी चाहिए कमला ! धन ही सब कुछ नहीं होता; हृदय भी बहुत कुछ है।

कमला—तो हृदय क्या वहीं है ? यहाँ नहीं।

मोहन—यहाँ ? यहाँ तो हृदय की स्वामिनी ही है।

कमला—चलो, बातें बनाते हो।

मोहन—नहीं कमला, एक बार घूम कर तो देखो, मज़दूरों के घरों की दशा। तब तुम समझोगी कि इनका जीवन क्या है। कैसे भीषण कष्टों का सामना करते हुए भी वे अपनी मनुष्यता बचाये रखते हैं। सचमुच, कमला, वे महान् हैं !

कमला—बाबू जी जाने दें, तब न ।

मोहन—जाने क्यों न देंगे ? पूछना ।

कमला—अच्छा, मज़दूर-नेता ! पूछूँगी ।

मोहन—नेता नहीं सेवक कहो ।

कमला—एक ही बात है । साम्यवाद में नेता ही सेवक होता है । (एक लाल फूल तोड़ती है) लो, साम्यवाद का प्रतीक ! (मोहन के कोट में खोंस देती है, उसी समय रायबहादुर का प्रवेश)

रायबहादुर—(गंभीर स्वर से) कमला ! (कमला चौंक कर पीछे हट जाती है । मोहन भी चौंकता है—फिर घूम कर नमस्कार करता है)

कमला—क्या है बाबू जी ?

रायबहादुर—(कमला तथा मोहन को क्षण भर देख कर) तू जा यहाँ से । मुझे मोहन से कुछ बातें करनी हैं । (कमला पहले विद्रोह करने पर उद्यत होती है; फिर सिर उठाये मोहन की ओर देखती चली जाती है ।)

रायबहादुर—मोहन !

मोहन—जी !

रायबहादुर—तुम अब अबोध नहीं हो मोहन, समझदार हुए । कमला भी सयानी हुई । ऐसी हालत में तुम लोगों का मिलना-जुलना मैं ठीक नहीं समझता । समझे ।

मोहन—लेकिन—

रायबहादुर—लेकिन वेकिन कुछ नहीं । तुम जानते हो कि कभी मेरी आशा थी कि तुम लायक निकलोगे, नाम होगा, बड़े आदमी

बनोगे। उस समय मैं समझता था कि शायद कमला तुम्हारे घर जाकर सुखी होगी। कमला की माँ भी यही सोचा करती थी। किन्तु तुमने हमारी आशाओं पर पानी फेर दिया। तुम्हारे पिता की मृत्यु ने तो तुम्हें और भी उच्छृङ्खल बना दिया है। लड़के अपने कन्धों पर भार पड़ने से सँभलते हैं, तुमने वह भार ही उठाना अस्वीकार कर दिया। मानता हूँ, संपत्ति-दान कर के तुमने बड़ा त्याग किया है। किन्तु, मोहन, सिर्फ धन के त्याग से ही जीवन सफल नहीं होता। कभी कभी अपनी इच्छाओं का त्याग भी करना पड़ता है। तुमने अपनी बुद्धि के भरोसे हम लोगों की राय नहीं मानी। मुझे इसका दुःख नहीं। तुम अपने जीवन के मालिक हो। अगर ग़रीब रहना पसन्द करते हो तो तुम्हारी इच्छा है। किन्तु मेरी बेटी ग़रीबी में नहीं रह सकती, उसका जीवन अमीरी में ही बीता है, जान बूझ कर उसे आग से खेलने नहीं दे सकता। मुझे उसके ही सुख का ध्यान है। अगर उसके लिये मुझे कठोर भी होना पड़े, तो भी मुझे हिचक नहीं होगी। उसके सुख के लिये मुझे यह कहना पड़ता है कि तुम आइन्दा यहाँ मत आया करो।

मोहन—(दबे स्वर से) किन्तु आप यह कैसे समझते हैं कि वह धनी के यहाँ ही सुख पायगी।

रायबहादुर—किन्तु ग़रीबी में वह निश्चय दुःख पायगी यह मैं जानता हूँ। जो नहीं होना है उसकी कल्पना ही क्यों की जाय। तुम्हारा संसर्ग उसके लिये दुःख का कारण बन सकता है, इस लिये उससे मिलना छोड़ दो।

मोहन—उसके सुख का ध्यान मुझे भी है।

राय बहादुर—अगर है, तो समझ सकते हो कि मैं जो कहता हूँ, ठीक कहता हूँ।

मोहन—पर...

राय बहादुर—मैं बहस नहीं करना चाहता। वचन दो कि तुम यहाँ नहीं आवोगे।

मोहन—किन्तु...

राय बहादुर—वचन दो। अपनी सन्तान का ख़याल क्या मुझे नहीं होगा। क्यों उसका जीवन नष्ट करते हो? वचन दो।

मोहन—(क्षण एक चुप रह कर फिर गम्भीर स्वर में) अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।

राय बहादुर—मैं आशा करता हूँ कि तुम इस बूढ़े को धोखा नहीं दोगे।

मोहन—(सिर उठाकर) आप निश्चिन्त रहें। मैंने झूठ बोलना नहीं सीखा है। जब तक आप नहीं बुलायेंगे मैं यहाँ नहीं आऊँगा।

(धीरे धीरे बाहर हो जाता है)

राय बहादुर—(रूमाल निकाल कर पसीना पोछते हैं) कहना ही पड़ा, लेकिन, क्या करता? (इधर उधर टहलते हैं) कमला! ओ कमला! कहाँ गई! देखूँ (जाते हैं)।

(पर्दा गिरता है)

———

सातवाँ दृश्य

[गोपाल का घर। सुबह का झुटपुटा। गोपाल आँख मलता हुआ आता है। कोने में रखी लालटेन को तेज़ करता है। अलगनी से गमछा और कोने से लोटा उठाता है]

गोपाल—निगोड़ी नींद भी सुबह के वक़्त ही लगती है (दूसरी ओर चला जाता है कुछ देर बाद लौट कर लोटा गमछा यथास्थान रख, थर्मस से चाय ढालता है)

गोपाल—रोटी न जाने कहाँ रख दी। अब क्या खाऊँ? कोई ज़रा देखने वाला नहीं। खाली पेट काम पर जाना पड़ेगा। ज़रा सा काम तो लोगों से होता नहीं (चाय पीने लगता है। उसकी स्त्री आती है)।

स्त्री—खाली पेट चाय पीने लगे! खराई करेगी।

गोपाल—(चिढ़े स्वर में) कुछ नहीं करेगी।

स्त्री—मैंने रत्ना को कहा था रोटी रख देवे। (इधर उधर खोजती है)

गोपाल—तुम ही रख देती तो क्या तुम्हारे हाथ घिस जाते?

स्त्री—रत्ना ही को कह दिया तो वह कौन छोटी हो गई?

गोपाल—सुबह सुबह तंग न करो। जा कर सो क्यों नहीं रहती?

स्त्री—आज ज़रा देर हो गई; तो बिगड़ते काहे हो? रोगी शरीर है, ज़रा झपकी लग गई। तुम पुकार लेते।

गोपल—रोगी शरीर क्या आज का है? बरसों तो हो गई इलाज कराते।

स्त्री—तो क्या बीमार पड़ कर हलुआ पूड़ी खाती हूँ? या बीमारी का शौक है? शरीर ही तो है।

गोपाल—मैंने कौनसी बात कह दी जो तुम बिगड़ उठी ? जाओ सोओ जाकर। रोगी शरीर है, फिर पड़ोगी तो बाबा कहे देता हूँ—अब कुछ जमा पूँजी नहीं बची है जो इलाज कराऊँगा।

स्त्री—(तीखे स्वर में) मत कराना इलाज। मर ही न जाऊँगी ? इससे तो वही अच्छा।

गोपाल—सुबह सुबह जमराज को पुकारती हो। अच्छा न होगा।

(बाहर भोंपा बजता है)

गोपाल—(हाथ का गिलास नीचे रख कर) लो भोंपा बज गया। (जल्दी जल्दी कोट उठा कर पहनता है) रोज़ देरी, रोज़ देरी (जाने लगता है)

स्त्री—चाय तो पी लो।

गोपाल—समय नहीं है, तू ही पी ले। (जाता है)

स्त्री—खाली पेट गये हैं। मैं तो मरी किसी काम की नहीं। रत्ना ही उठ कर खिला देती तो क्या बिगड़ता उसका ?

(रत्ना का प्रवेश)

रत्ना—भौजी, भैया गये,

स्त्री—हाँ; बिना खाये पिए।

रत्ना—क्यों ? रोटियाँ तो मैंने रखी थीं।

स्त्री—मेरे हाथ से रोटी लेना उन्हें अच्छा लगता है ? मेरा मुँह ही मानों उन्हें काट खाता है।

रत्ना—(हँसकर) सच भाभी !

स्त्री—तुम्हें हँसी सूझती है, और किसी की जान जाती है।

रत्ना—क्या असगुन बात बोलती हो।

(मां का प्रवेश—घबराई हुई सी)

माँ—गोपाल गया ?

रत्ना—हाँ माँ, क्यों ?

माँ—चला ही गया, हाय भगवान् !

स्त्री—(घबराकर) क्या बात है माँ ?

माँ—कुछ नहीं बहू, उसे रोकने आई थी। बड़ा भयानक सुपना था।

स्त्री—क्या ?

माँ—ख़ून ! चारों ओर ख़ून ! और गोपाल !

स्त्री—(कांप कर) अभी दूर नहीं गये होंगे माँ ! बुला लो।

रत्ना—बुलाऊँ, माँ ?

माँ—चला ही गया। अब क्या लौटाने से रुकेगा ? मेरी फूटी किस्मत !

रत्ना—लेकिन माँ वह तो सुपना ही था।

माँ—सुपना ही था बेटी ! पर ऐसा भयानक ! ओफ़ ! ऐसे सुपने का फल बुरा होता है बेटी !

रत्ना—सुपने तो ऐसे ही होते हैं माँ !

माँ—तुम लोग तो चार अच्छर पढ़ गईं तो तुम्हारे लिये दुनियाँ झूठी हो गई। सुबह का सुपना है; झूठा कैसे होगा ?

स्त्री—तब क्या होगा माँ।

माँ—जो भाग में बदा है। जानती है, गोपाल के बाप मरे थे तो ऐसा ही सुपना देखा था मैंने, उन्हें लाख रोका पर क्या रोक सकी ? वे गये और फिर लौट कर नहीं आये। वहीं मिट्टी गिर जाने से दब गये !

स्त्री—(घबराकर दीनता से) रत्ना! जा बहिन! बुला ला।

रत्ना—अब तो पहुँच भी गये होंगे।

माँ—जब रत्ना के चचा मरे तब भी ऐसा ही सुपना देखा था। जमाई मरे तब भी और—और आज भी।

स्त्री—जा न रत्ना! (रत्ना हिचकती है) अच्छा तब मैं ही जाती हूँ।

(जाना चाहती है)

रत्ना—ठहर भाभी—कहाँ जायगी?

माँ—तेरे जाने से क्या होगा बहू? जो होना है सो तो होगा ही।

(बाहर से तेज़ भोंपे की आवाज़ आती है)

स्त्री—हाय राम! (बाहर की ओर दौड़ना चाहती है। रत्ना पकड़ लेती है) छोड़, छोड़ दे मुझे, छोड़, जाने दे।

रत्ना—पागल हो गई हो भाभी? कहाँ जाओगी? जाकर क्या करोगी?

स्त्री—छोड़, नहीं तो काट खाऊँगी। हे राम छोड़! (छुड़ाने की चेष्टा करती है। रत्ना किवाड़ के बीच खड़ी हो रास्ता रोक लेती है)

माँ—(काँपती आवाज़ से) भगवान् रक्षक हैं बहू! कहाँ जायगी तू? जो होना था सो होगया।

स्त्री—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मुझे जाने दे, जाने दे, जाने दे।

(रोने लगती है)

रत्ना—भाभी, होश सँभाल! घबराने से क्या होगा?

(बाहर से आवाज़ आती है)

आचार्य—गोपाल की माँ! गोपाल गया?

माँ—हाँ।

आवाज़—भगवान मालिक हैं।

(स्त्री अचानक बाहर निकलना चाहती है। रत्ना रोकती है। तब गिर कर ज़मीन से सिर पटकती है। फिर स्थिर हो जाती है)

माँ—बहू, बहू, ! (रत्ना से) हाय बेटी ! देख तो इसे—

रत्ना—दाती लग गई है।

(एक पड़ोसिन का प्रवेश)

पड़ोसिन—गोपाल गया ?

माँ—हाँ।

पड़ोसिन—रस्सी टूट गई है टोकरी की। आठ आदमी दब गये हैं।

मां—हे भगवान ! तू ही बचाने वाला है।

स्त्री—(उठकर) मुझे जाने दे माँ !

पड़ोसिन—तू कहाँ जायगी बेटी ? क्या करेगी वहाँ जाकर ? डाक्टर तो पहुँच ही गया होगा। हम लोगों के जाने से हर्ज ही होगा।

स्त्री—(रोते हुए) लड़कर गये थे, माँ !

पड़ोसिन—तो रोती क्यों है बेटी ? अभी क्या जाने कौन मरा है।

स्त्री—मरा है ? (उठ कर फिर बाहर जाने की चेष्टा करती है। पड़ोसिन रोक लेती है, वह छुड़ाने की चेष्टा करती है)

पड़ोसिन—सबर कर बेटी। पागल न बन।

रत्ना—मैं जाती हूँ भाभी ! तू ठहर।　　　　(जाती है।)

(पड़ोसिन स्त्री को पकड़े खड़ी है। माँ पत्थर की मूर्ति सी स्थिर है। स्त्री सिसक रही है। कुछ देर बाद बाहर से आवाज़ आती है—"यही घर ?" और रत्ना का उत्तर "हाँ, इधर"। स्ट्रेचर पर गोपाल को उठाये

आदमी आते हैं। गोपाल के सिर, पाँव, हाथ में पट्टी बँधी है।)

स्ट्रेचरवाले—ज़्यादा चोट नहीं लगी। घबराओ नहीं। डाक्टर साहब आयेंगे अभी। तब तक हिलाना डुलाना नहीं। दो एक हड्डी टूटी है।

रत्ना—(पड़ोसिन से) मौसी !

पड़ोसिन—हाँ बेटी !

रत्ना—मौसी ! महावीर भैया......

(पड़ोसिन चीख उठती है—हाय बेटा ! बाहर भागती है। छूट कर गोपाल की स्त्री गोपाल पर गिरते गिरते बचती है और वहीं बैठ जाती है। माँ और रत्ना रो रही हैं।)

गोपाल—(सिर हिलाकर इधर उधर देख) मां ! रत्ना !

माँ—हाँ बेटा !

रत्ना—हाँ भैया !

गोपाल—उन सब को देखो ! मैं तो बच गया। तुम्हारी बहू का सिन्दूर बलवान् था। (स्त्री रोते हुए गोपाल के पाँवों पर झुक जाती है)

माँ—बहू, तू इसे देख। मैं महावीर की माँ को देखूँ, बेचारी...

(माँ, रत्ना जाती हैं)

गोपाल—पगली ! रोती है ?

स्त्री—कसम खाती हूँ, अब कभी देर न होगी।

गोपाल—पागल कहीं की !

(पर्दा गिरता है—)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(राय बहादुर का दफ्तर । रायबहादुर और कैलाश बैठे हैं)

कैलाश—अभी तक नहीं आये ?

रायबहादुर—रिपोर्ट तो है, परन्तु जान लेता कि सब कैसे हैं तो सन्तोष हो जाता ।

कैलाश—सब अच्छे ही होंगे ।

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—आपने बुलाया था रायबहादुर !

रायबहादुर—हाँ डाक्टर मोहन ! हालांकि आपकी रिपोर्ट मेरे सामने है, मैं आप से इस दुर्घटना के शिकार हुए लोगों के बारे में पूछना चाहता था । बैठिये (मोहन बैठता है)

मोहन—आप क्या जानना चाहते हैं ?

रायबहादुर—क्या हाल है उन सब का (रिपोर्ट देख कर) तीन तो मर गए । बाकी पाँचों का क्या हाल है ?

मोहन—तीन अच्छे ही हैं । सिर्फ गोपाल और रामदीन को चोट ज़्यादा थी ।

रायबहादुर—उनका क्या हाल है ?

मोहन—गोपाल की एक टाँग टूट गई है । और एक हाथ बेकाम हो गया है । रामदीन की तीन पसलियाँ टूट गई हैं ।

रायबहादुर—जान का खतरा तो अब नहीं है न ?

मोहन—मेरी समझ में तो नहीं है।

रायबहादुर—कितना समय लँगे ठीक होने में ?

मोहन—अभी प्रायः दो मास लगेंगे।

रायबहादुर—हूँ !

मोहन—रामदीन तो काम लायक हो जायगा, परन्तु गोपाल नहीं। उसका एक हाथ तो बेकार हो ही गया है। अच्छा होने पर भी ज़रा लँगड़ा रह जायगा।

रायबहादुर—अभी तक की सब दुर्घटनाओं में से यही भयंकर हुई है। लेकिन किसे पता था कि यह बात होगी।

मोहन—एक आदमी जरूर जानता था।

रायबहादुर—(चकित होकर) कौन ?

मोहन—जिसने इसे कराया होगा।

रायबहादुर—अर्थात् ?

मोहन—मैंने रस्सी देखी थी। वह टूटी नहीं थी, काटी गई थी। आधे से अधिक काट दी गई थी। ज़रा सा और काट दी जाती तो टोकरी बहुत पहले ही गिर जाती। और कोई भी ज़िंदा न बचता।

रायबहादुर—किसने काटी होगी ! कौन ऐसा नीच है ?

मोहन—यह मैं क्या जानूँ ?

रायबहादुर—उन बेचारे ग़रीबों से किसे दुश्मनी थी ?

मोहन—मुझे तो पता नहीं। हाँ शायद कैलाश बाबू कुछ जानते हों, वे वहीं थे।

कैलाश—(चौंक कर) मैं ? मैं तो वहाँ बाद में पहुँचा था।

मोहन—अच्छा ? किन्तु रामदीन गोपाल दोनों ने कहा था कि आप वहाँ थे, उनके पहुँचने के पहले ही।

कैलाश—झूठे हैं दोनों।

मोहन—उन्हें मैं जानता हूँ। वे झूठ नहीं बोलते। और झूठ बोलकर उन्हें क्या फ़ायदा होगा ? आपने तो रस्सी काटी नहीं।

कैलाश—मैं क्यों रस्सी काटता ? मैं तो एलारम सुन कर वहाँ गया था।

रायबहादुर—तुमने रस्सी देखी थी कैलाश ?

कैलाश—हाँ पर मुझे तो ऐसा ही लगा जैसे कि रस्सी टूटी हो।

मोहन—रस्सी एकदम नयी थी टूटती कैसे ?

रायबहादुर—हाँ, रस्सी तो अभी हाल ही में आई थी। टूटती कैसे ?

कैलाश—तो काटता ही कौन ? और क्यों ?

रायबहादुर—इस बात की जाँच करनी होगी। पुलिस इन्क्वायरी करानी पड़ेगी !

कैलाश—फ़िज़ूल बाबू जी ! रस्सी टूटी थी; मैंने देखा है।

मोहन—यह तो जाँच में स्पष्ट हो जायगा। अगर टूटी थी; तो ख़ैर। वर्ना जिसने काटी होगी वह ज़रूर दण्ड का भागी होगा।

कैलाश—आप भूल करते हैं डाक्टर साहब ! रस्सी किसी ने नहीं काटी।

मोहन—मेरा तो विश्वास है कि काटी है। और जिसने काटी है, उसे दण्ड दिलाने में मैं कोई कसर न रखूँगा।

कैलाश—आप अपना काम देखिये, डाक्टर साहब ! व्यर्थ की बातें करने की ज़रूरत नहीं ।

मोहन—मैं व्यर्थ बातें नहीं करता। दोषी को दंड दिलाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है ।

रायबहादुर—अगर कोई दोषी हुआ तो उसे अवश्य दंड मिलेगा मोहन ! मैं अभी पुलिस को खबर करता हूँ ।

कैलाश—आप भी बहकाने में आ गये बाबू जी ?

मोहन—कैलाश बाबू, आप तो ऐसे बातें करते हैं जैसे आप ने स्वयं रस्सी काटी हो ? आप क्यों इतना घबरा रहे हैं ?

कैलाश—मोहन ! होश सँभाल कर बातें करो, वर्ना ठीक नहीं होगा । मुझ से दुश्मनी नहीं निभ सकती ।

मोहन—देखते हैं रायबहादुर ! मैंने ऐसी कौनसी बात कह दी जिससे यह इतना बिगड़ गये । मुझे निश्चय मालूम होता है कि यह आकस्मिक दुर्घटना नहीं बल्कि किसी ने जान बूझ कर वैर साधा है । गोपाल ने भी ऐसा ही सन्देह प्रगट किया था ।

रायबहादुर—सिर्फ सन्देह से तो काम नहीं चलेगा ।

मोहन—कैलाश बाबू से पूछिये । जाँच से जब वे इतना घबराते हैं, तो निश्चय जानते होंगे ।

रायबहादुर—यह अन्याय कर रहे हो मोहन !

कैशाल—मेरा अपमान कर रहे हैं, जान बूझ कर । गोपाल की चोट से इनका दिमाग फिर गया है ।

रायबहादुर—वास्तव में तुम्हारा आक्षेप आधारहीन है, मोहन, अनुचित है।

कैलाश—फिर इन जैसे आदमी की बात का विश्वास क्या? अपने मतलब के लिये इन्होंने ही रस्सी काटी हो तो आश्चर्य नहीं। तभी इतना निश्चय पूर्वक कहते हैं कि रस्सी काटी ही गई थी।

मोहन—मैंने काटी हो? क्यों? मुझे फ़ायदा?

कैलाश—गोपाल की मृत्यु।

मोहन—गोपाल की मृत्यु से बढ़ कर हानि मेरी और क्या होगी! वह तो मेरा दाहिना हाथ है।

कैलाश—मुझसे मत उड़िये, डाक्टर साहब! मुझे सब मालूम है कि आप क्यों दौड़ दौड़ कर वहाँ जाते हैं।

मोहन—(क्रोध से) आपका मतलब?

कैलाश—मतलब? जाकर पूछिये गोपाल की बहन से जिसे आपने स्कूल में रखवाया, जिसे आप नर्सिंग सिखाते हैं।

मोहन—(कुर्सी से खड़ा हो जाता है) आप होश में हैं कैलाश बाबू?

राय बहादुर—यह सब क्या बकते हो कैलाश? मोहन वैसा लड़का नहीं है।

कैलाश—मैं खूब होश में हूँ, और बकता भी नहीं। यथार्थ बात कह रहा हूँ, जिसे सारा इलाक़ा जानता है।

मोहन—झूठ—सरासर......

कैलाश—आपके कहने से! आपने आज बात खुलवा दी, वरना मैं तो आपको नोटिस देने ही वाला था। बदचलन आदमी को डिस्पेंसरी में रखने पर मेरे पास कई शिकायतें आई हैं। मैं समझता था कि

आप सुधर जायँगे। अब देखता हूँ कि आशा व्यर्थ थी, आप अपने को बर्खास्त समझें।

मोहन—रायबहादुर! बुलाकर अपमान करना कहाँ तक उचित है, आप जानें। आपका लिहाज़ करता हूँ इसलिये चुप हूँ, वर्ना......

रायबहादुर—कैलाश! क्या बकते हो? चुप रहो!

कैलाश—यह देखिये—शिकायतें। (एक फाइल खींच कर सामने रखता है।) मैंने दूसरे डाक्टर को एपाइँट भी कर लिया है। दो चार रोज़ में आ जायगा। वही, मेरे बचपन का साथी प्रकाश।

रायबहादुर—बिना मुझसे पूछे?

कैलाश—मैं जानता था कि आप बदचलन आदमी को रखना पसन्द नहीं करेंगे। इससे अपनी ही निन्दा होती है।

रायबहादुर—मोहन और बदचलन? नहीं हो सकता।

मोहन—इतने अपमान के बाद कोई भी आपकी नौकरी नहीं करना चाहेगा कैलाश बाबू! मैं जाता हूँ।

रायबहादुर—मोहन!

कैलाश—बहुत नौकर मिल जायेंगे डाक्टर साहब!

मोहन—प्रणाम करता हूँ रायबहादुर! (जाता है)

रायबहादुर—कैलाश! यह क्या किया तुमने? जानते हो मज़दूरों में मोहन का कितना आदर है! इस दुर्घटना के बाद उसे निकाल देना मज़दूरों को भड़काना है—अपने पाँव में स्वयं कुल्हाड़ी मारना है।

कैलाश—मजदूर भड़क कर क्या कर लेंगे। न काम करना हो न करें और बहुत मज़दूर मिल जायँगे।

रायबहादुर—अच्छा काम नहीं किया बेटा ! मुझसे पूछ तो लेते।

कैलाश—तो आप मेरा हुक्म काट दीजिये। इससे मेरी इज़्ज़त ख़ूब बढ़ जायगी। लोग जान जायँगे कि मेरे हुक्म का कोई असर नहीं।

रायबहादुर—नहीं बेटा, पर अच्छा नहीं किया। इसका फल बुरा ही होगा।

पर्दा गिरता है

दूसरा दृश्य

[वही आफ़िस। रायबहादुर अकेले चहल-क़दमी कर रहे हैं]

रायबहादुर—अजब आफ़त है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। लड़का है, लेकिन ज़िद्दी। मोहन को निकालना ही था तो कुछ दिन बाद हो जाता। इस से मज़दूरों में कितना असंतोष फैल गया। मोहन भी लेकिन नालायक निकला। उसका बाप जहाँ मेरी एक बात नहीं टालता था, मोहन मेरी एक बात भी मानने में अपनी हेठी समझता है। (घड़ी देख कर) दस बज गये। अब आते ही होंगे।

(कैलाश का प्रवेश)

कैलाश—बाबू जी ! वे लोग आगये हैं। देखिये, सख़्त ही रहियेगा। कमज़ोरी दिखाने से उनका हौसला बढ़ जायगा। फिर हरदम यह झमेला लगा रहेगा। कभी मज़दूरी बढ़ाओ, कभी कुछ करो, कभी कुछ।

रायबहादुर—सब झमेला तुम्हारा ही लगाया हुआ है। तुम लोग तो अब हमें मूर्ख समझते हो। अरे बाबा ! कुछ धूप में बाल नहीं पकाये हैं, दुनियाँ देखी है। लेकिन मेरे कहने का कुछ असर नहीं।

कैलाश—बाबू जी ! तब से अब में कितना अन्तर आ गया है—इस पर भी तो ग़ौर कीजिये। तब आप जो मज़दूरी देते थे, वे वही ले लेते थे। अब तो ट्रेड यूनियन है। हड़ताल की धमकी है। लोग हड़ताल ही करना चाहते हैं, तो करें। अगर उन्हें भूखा मरने का शौक है, तो हम क्यों रोकें !

रायबहादुर—लेकिन बेटा, वे मरेंगे तो पाप तुम्हारे सर लगेगा !

कैलाश—क्यों ? जब अपने को समझदार गिनते हैं; तो अपने कर्मों का फल भोगें। बिज़नेस है यह तो; इसमें अगर हम इस तरह का विश्वास करने लगें तो मिटते कै दिन लगेंगे ? हमें अपना फ़ायदा देखना है, उनका नहीं। क्या अगर वे हड़ताल की धमकी पर मज़दूरी दुगुनी कर देने को कहें तो आप दुगुनी मज़दूरी देना स्वीकार कर लेंगे ?

रायबहादुर—वह दूसरी बात है। लेकिन जो बात मुझे जायज़...

कैलाश—(टोक कर) इसमें जायज़ नाजायज़ का प्रश्न कैसा ? वे अपनी माँग को जायज़ समझते हैं, हम अपने कहने को।

रायबहादुर—लेकिन बेटा ! अगर गोपाल वग़ैरह को तुम मासिक बाँध देते तो इस झमेले से बच जाते कि नहीं ?

कैलाश—लेकिन उसका फल क्या होता ? आये दिन ऐसी ही दुर्घटनायें होतीं और लोग घर बैठे हमसे हर्जाना वसूल करते ! यह तो जान बूझ कर दुर्घटना कराई गई थी। वह तो इनक्वायरी में स्पष्ट हो गया था। रहा गोपाल को हर्जाना देना। सो डाक्टर प्रकाश ने तो यही कहा था कि अगर उसका हाथ ठीक से बैठाया जाता, और पाँव की हड्डी ठीक से जोड़ी जाती तो वह ठीक हो जाता। मुझे तो

ऐसा मालूम होता है कि मोहन ने जान बूझ कर उसकी पट्टी इत्यादि में गड़बड़ की है ताकि वह हर्जाने का दावा कर सके। आप दे ही देते। आपकी सरलता का अनुचित लाभ उठाना चाहते थे वे !

रायबहादुर—मोहन के प्रति ऐसे भाव तुम्हारे मन में उठना अनुचित है बेटा ! मोहन को मैं बचपन से जानता हूँ, उसे गोदी में खिलाया है मैंने। वह ऐसा नीच नहीं हो सकता। फिर, अगर गोपाल को घर बैठे ही खिलाना होता तो क्या उसके पास संपत्ति नहीं थी ? उस में से दे सकता था।

कैलाश—तब गोपाल के आत्मसम्मान को ठेस लगती। मोहन को मैं भी जानता हूँ। भीतर से वह बड़ा घुन्ना है। चाहता है कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

रायबहादुर—मैं तो उसे हमेशा से दिल का साफ़ ही जानता था। खैर, मैंने अपनी राय बता दी। मानना न मानना तुम्हारे हाथ है। लेकिन मज़दूरों को कोरा जबाब मुझ से न दिया जायगा।

कैलाश—मैं ही दूँगा। आप डेपुटेशन को पहले समझाने की कोशिश करें, फिर मैं देख लूँगा।

रायबहादुर—तुम्हारी मर्ज़ी। तुम पर भार छोड़ दिया था मैंने, इसी से दख़ल नहीं दूँगा। किन्तु ठीक नहीं हो रहा।

कैलाश—सब ठीक है बाबू जी! आप किसी तरह की चिन्ता न करें। इन लोगों की मज़ाल नहीं कि कुछ कर सकें। कोरी धमकी से मैं नहीं डरता।

(बुधुआ का प्रवेश)

बुधुआ—हुजूर, मज़दूर आये हैं—हुजूर से कुछ अर्ज़ करने।

कैलाश—भेज दो यहीं। (बुधुआ जाता है। रायबहादुर और कैलाश बैठ जाते हैं। चार मज़दूरों का प्रवेश)

रायबहादुर—कहो भाई ! क्या कहना चाहते हो ?

मज़दूर—हम लोग मज़दूरों की तरफ़ से आये थे—आपसे यह जानने कि उस दुर्घटना से मरे और बेकार हुए लोगों के लिये क्या प्रबन्ध होगा।

रायबहादुर—इसका जवाब तो तुम्हें मिल ही चुका है।

मज़दूर—वह जवाब सन्तोषजनक नहीं है। आप मानते ही हैं कि वे लोग हर्जाने के हकदार हैं। क्या आप यह उचित समझते हैं कि जो व्यक्ति आपके काम में आपके फायदे के लिये मर गया उसके घरवाले भूखों मरें ?

रायबहादुर—तुम जानते हो कि यह दुर्घटना आकस्मिक नहीं थी।

मज़दूर—तो अपराधी को दंड क्यों नहीं दिया गया ? खैर, यह आप जानें। मज़दूरों की जान गई जब वे आपके काम पर थे। उनकी मौत के जिम्मेवार आप हैं और उनके घरवालों का भार भी आप पर है।

रायबहादुर—तो उनके परिवार वालों के लिए मैंने भत्ता नियत कर दिया है न।

मज़दूर—जी, तीन रुपया माहवार ! आप मालिक हैं, विद्वान् हैं। आप ही सोचें—सुक्खू के परिवार में चार बच्चे, एक स्त्री, एक

बूढ़ी माँ है। छै आदमी तीन रुपये से कैसे गुज़र करेंगे? सुक्खू खुद तीस रुपये पाता था, उस में भी मुश्किल से गुज़र होती थी।

रायबहादुर—सो तो समझता हूँ। लेकिन—

कैलाश—(मुँह बनाकर) ग़रीबों के इतने बच्चे भी क्यों होते हैं? उस समय लोग नहीं सोचते—

मज़दूर—ग़रीबों के बच्चे ज्यादा न हों; कैलाश बाबू, तो आप को मज़दूर कहाँ से मिलें? फिर जब भगवान् मुँह देते हैं, तो खाने को भी देंगे।

कैलाश—तो भगवान् से ही क्यों नहीं माँगते? यहाँ क्यों आए हो?

मज़दूर—तो आपका यही अन्तिम उत्तर है?

कैलाश—हाँ।

मज़दूर—और घायलों के लिए?

कैलाश—तीन तो अच्छे हैं। उनके ठीक होने तक उनका दरमाहा दिया ही जायगा। रामदास के इलाज का खर्च तथा दरमाहा मिलता ही है।

मज़दूर—और गोपाल?

कैलाश—डा० प्रकाश ने कहा है कि डाक्टर मोहन ने जान बूझ कर उनका पाँव खराब किया है। गोपाल को हर्जाना वही देंगे।

मज़दूर—सो कैसे?

कैलाश—देखो डाक्टर प्रकाश की रिपोर्ट। गोपाल को चाहिये कि वह उनपर केस करे या हमें ही अर्ज़ी दे। हम उसकी ओर से केस कर देंगे। कोर्ट उसे हर्जाना दिला देगा।

मज़दूर—मोहन बाबू पर केस? यह आप क्या कहते हैं?

कैलाश—जब उसने जान बूझ कर गोपाल को निकम्मा बनाया है

तो उस पर केस नहीं होगा ?

मज़दूर—जान बूझ कर ? कैलाश बाबू ! आप ग़लत कहते हैं।

कैलाश—(बिगड़कर) मैं कहता हूँ या डाक्टर प्रकाश कहते हैं ? यह देखो रिपोर्ट।

मज़दूर—तो डाक्टर प्रकाश झूठे हैं।

कैलाश—और मोहन सच्चा है ? खैर, गोपाल को हर्जाना वही देंगे।

मज़दूर—(रायबहादुर से) तो बड़े सरकार ! आपका यही फ़ैसला है ? ग़रीबों को सता कर आपको क्या मिलेगा ?

(रायबहादुर सिर झुकाये चुप रहते हैं)

कैलाश—हम क्यों सतायेंगे ? हाँ अगर तुम चाँद माँगो तो क्या हम दे सकते हैं ?

मज़दूर—तो हुज़ूर ! मुझे यह कहने का अधिकार दिया गया है कि अगर हर्जाना बढ़ाया न गया और गोपाल को भी हर्जाना न मिला, तो लोग हड़ताल करने पर मजबूर होंगे।

रायबहादुर—कितना बढ़ाना चाहते हो ?

मज़दूर—तनखाह का कम से कम आधा।

कैलाश—नहीं हो सकता।

मज़दूर—तो हम कल से हड़ताल करेंगे।

कैलाश—हड़ताल हँसी खेल नहीं है जनाब !

मज़दूर—यह हम भी जानते हैं। जब आप मारने पर तुले हुए हैं, तो हम लोग भी मरने को तैयार हैं !

रायबहादुर—ज़रा सी बात को लेकर तुम लोग हड़ताल करने पर तुल गये ! पहले तो ऐसे न थे।

मजदूर—पहले आप मालिक थे, अब कैलाश बाबू हैं। फिर यह ज़रा सी बात कैसे ? ऐसी घटनायें रोज़ होंगी, रोज़ लोग इसी तरह मरेंगे।

रायबहादुर—रोज़ तो दुर्घटना होती नहीं।

मजदूर—जब रस्सी ही काटनी है, तो रोज़ भी कट सकती है।

रायबहादुर—तो क्या हमी रस्सी काटते हैं ?

मजदूर—कोई तो काटता ही है। जान जाती है मज़दूरों की, मुनाफ़ा उठाते हैं मालिक !

कैलाश—तो क्या मुनाफ़ा भी न लें ? इतना रुपया लगाया है क्या तुम्हीं लोगों के लिये ? जाओ, जाकर कह देना जो करना हो करें। लेकिन सोच लें, यहाँ पत्थर से टक्कर है। व्यर्थ भूखों मरने से क्या फायदा, अपना अपना काम देखें।

मजदूर—अपना काम ही देखने आये हैं। सुनवाई नहीं हुई तो जाकर कह देंगे। कल से कारखाना बंद रहेगा।

कैलाश—तुम्हारे कहने से ? एक के बदले दस मज़दूर मिल जायँगे।

मजदूर—देखा जायगा। अच्छा, तो प्रणाम स्वीकार हो। (प्रणाम करते हैं) हम जाते हैं......　　　　(जाते हैं)

रायबहादुर—अब ?

कैलाश—पुलिस को फोन कर देता हूँ। हड़ताल करेंगे ! चार रोज़ में गर्मी निकल जायगी तो आकर पाँव पड़ेंगे।

रायबहादुर—जो ठीक समझो। मैं बूढ़ा तो कुछ समझ नहीं सकता।

पर्दा गिरता है।

तीसरा दृश्य

[गोपाल का घर । कुछ मजदूर बैठे हैं ।]

पहला—तो भाइयो ! आज से हड़ताल शुरू है ।

दूसरा—हाँ भाई, शुरू तो बहुत पहले ही होनी चाहिये थी । खैर, अब अपनी सारी तकलीफ़ें एक साथ ही दूर करा लेनी चाहियें ।

तीसरा—सो कैसे ? जिस बात को लेकर हड़ताल हुई है, एक वही न पेश की जायगी ?

दूसरा—क्यों ? यह तो आखिरी बूँद थी । घड़ा भर गया है, तो एक साथ ही खाली होगा ।

चौथा—मज़दूरी बढ़ना भी ज़रूरी है । पहले से दुगुना उत्पादन करते हैं हम लोग ।

तीसरा—दो दिन तो नहीं करते !

चौथा—उससे क्या ! दुगुना काम करते हैं । मज़दूरी भी दुगुनी होनी चाहिये ।

तीसरा—लेकिन उनकी मशीनरी में लगा खर्च ?

चौथा—सो अपने मुनाफे में से दें । हमी से क्यों वसूल करेंगे ?

पहला—अरे भाई ! मोहनबाबू को तो आ लेने दो ! देखें वे क्या कहते हैं ? उनके विचार से तो हड़ताल नहीं होनी चाहिये ।

दूसरा—नहीं, उनका यही मतलब था कि रायबहादुर हड़ताल की नौबत न आने देंगे ।

(मोहन का प्रवेश—सब मजदूर उठकर नमस्कार करते हैं)

मोहन—क्यों भई, क्या सुन रहा हूँ ?

पहला—सुनवाई नहीं हुई। हमने हड़ताल का नोटिस दे दिया है।

मोहन—रायबहादुर ने क्या जवाब दिया?

पहला—जवाब दिया कैलाशबाबू ने।

मोहन—तुम्हें तो रायबहादुर से मिलना चाहिये था। वही मालिक हैं।

दूसरा—जब थे तब थे। आजकल तो कैलाशबाबू ही कर्ता-धर्ता है। उन्होंने साफ़ कह दिया कि गोपाल को हर्जाना आप देंगे—क्योंकि उसे आपने ही निकम्मा बनाया है। बाकियों के लिये जो हो गया है वही रहेगा।

मोहन—मैंने? यह अन्याय!

दूसरा—यह सब उसी नये डाक्टर की शरारत है।

मोहन—डाक्टर प्रकाश तो मेरे साथी थे। उनके पिता को भी मैं जानता हूँ। उनसे तो ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती।

दूसरा—आज कल तो वही होता है जिसकी आशा न हो!

मोहन—खैर! हमें आशा के भरोसे नहीं बैठना है। कठोर कर्तव्य सामने है। हड़ताल हुई, अच्छा हुआ! लेकिन आजकल का हाल देखते हुए डर है कि उन्हें दूसरे मज़दूर न मिल जायँ।

दूसरा—मजाल है कोई काम पर जाय! भुरकुस निकाल देंगे...

मोहन—ख़बरदार जो ऐसी बात बोले! तुम सिर्फ़ समझा सकते हो, ज़बरदस्ती नहीं कर सकते! जो बात हम दूसरों में बुरी गिनते हैं, स्वयं वही करेंगे?

पहला—तब !

मोहन—तब क्या ? कष्ट सहने के लिये तैयार हो जाओ। अभी तुम्हें शायद पता नहीं कि हड़ताल के मानी क्या हैं। तुम समझते होगे कि इसका फैसला दो चार दिन में हो जायगा। ऐसा न समझो ! हो सकता है कि कई दिन लगें—महीनों लगें। तब तक मालिकों को तो कुछ न होगा, उनके पास रुपया है। लेकिन तुम लोग—तुम लोग अनुभव करोगे कष्ट, भूख, तंगी, और न जाने क्या क्या। अगर तुम डरे या झुके तो समझ लो कि गुलामी की बेड़ी और मज़बूत हो गई।

मज़दूर—हम नहीं झुकेंगे—चाहे मर जायँ।

मोहन—हक के लिये मरने में भी इज़्ज़त है।

एक मज़दूर—अभी ही कौन सुख भोगते हैं ?

मोहन—यही तो ! तुम्हारे मालिक कभी यह थोड़े देखते हैं कि तुम कैसे रहते हो ! उन्हें इस बात से मतलब थोड़े है कि तुम खाते हो या नहीं ! उन्हें अपने नफ़े से मतलब है। काम करो तुम, फ़ायदा उठाये कोई ! तुमने ही यह कारखाना तैयार किया, तुम्हारे ही बल पर यह चलता है, किन्तु अगर तुम्हारी जान भी उसमें चली जाय तो कोई देखने वाला नहीं ! तुम्हारे बच्चे भर पेट खाते हैं या नहीं, तुम्हारी औरतों के तन पर कपड़ा है या नहीं, इसकी पर्वाह किसे है ?

मज़दूर—हमें, और किसे होगी ?

मोहन—यह सब सोच लो ! कदम बढ़ा चुके हो। हटने का मतलब होगा मरना। और डटने का मतलब होगा इज़्ज़त से जीना। क्या चाहते हो तुम ?

मजदूर—जीना—इन्सानों की तरह, इज़्ज़त से।

मोहन—तो कष्ट सहने के लिये तैयार रहो।

मज़दूर—हम तैयार हैं।

मोहन—कल अगर बच्चों का बिलबिलाना न देख सके तो?

पहला मजदूर—हम आँखें बंद कर लेगें, पर पीछे नहीं हटेंगे।

दूसरा—हम बिना अपना हक लिये नहीं रह सकते। अगर मालिक न दें तो वे मालिक कैसे?

मोहन—मालिकों के प्रति दुर्भावना को हृदय से निकाल दो। तुम्हारी लड़ाई उनसे नहीं बल्कि समाज की इन संस्थाओं से है जोकि पुरानी हो जाने पर भी गिरना नहीं चाहतीं। मालिकों का जीवन उसी वातावरण में बीता है। इसी से वे कठोर प्रतीत होते हैं।

मजदूर—हम उन्हें नर्म कर देंगे।

मोहन—हाँ। तुम्हारे त्याग और धीरज की आग ही उस कठोर हृदय को गला कर नये साँचे में ढाल सकती है—पुराने के बदले में नया युग ला सकती है। तुम लोग उसी स्वर्ण युग के निर्माता हो जिसमें कि गरीबी और उससे उत्पन्न दुःख नहीं रह जायगा। इसे हमेशा याद रक्खो। तुम्हारी लड़ाई चाहे जितनी छोटी हो उस स्वर्ण युग के निर्माण में सहायक होगी। धीरजपूर्वक उसके लिये कष्ट सहने को तैयार रहो। सोना तपने पर ही चमकता है।

मजदूर—आपके आशीर्वाद से हम सफल होंगे।

मोहन—मेरा पूरा सहयोग तुम्हारे साथ है।

मजदूर—तब सफलता भी हमारी है।

(सब मिल कर गाते हैं)

हमारा शुरू हुआ है जंग, हमारा......
युद्ध करेंगे, जूझ मरेंगे, नर-नारी इक संग; हमारा......
हम हैं मेहनत करने वाले,
फिर भी भूखों मरने वाले,
स्वयं दुखी, दुख हरने वाले,
हमारा कभी न बदले रंग।
हमारा शुरू हुआ है जंग।

(गाते गाते जाते हैं। मोहन खड़ा रहता है)

मोहन—(स्वगत) एक ओर न्याय, एक ओर प्रेम ! कठिन समस्या है ! क्या करूँ ? हड़ताल का साथ दूँ तो यह समझा जायगा कि नौकरी छूटने की प्रतिक्रिया है। और न दूँ तो कैसे ? आत्मा क्यों कर मानेगी ? (इधर उधर टहलता है)

(रत्ना आती है। कुछ देर खड़ी खड़ी देखती है। फिर...)

रत्ना—मोहन बाबू !

मोहन—(चौंककर) कौन रत्ना ?

रत्ना—हाँ, क्या सोच रहे थे ?

मोहन—कुछ नहीं।

रत्ना—कुछ नहीं कैसे ? मैं जानती हूँ।

मोहन—क्या जानती हो ?

रत्ना—कि क्या सोच रहे थे।

मोहन—क्या ?

रत्ना—यही कि इस हड़ताल में साथ देने से कमला नाराज़ हो जायगी ! (हँस पड़ती है) क्यों, ठीक है न ?

मोहन—हाँ ।

रत्ना—मोहन बाबू ! मुझसे छिपाना व्यर्थ है। लेकिन आप इतने दिन में भी कमला को पहचान न सके । मैंने तो आपको एक ही दिन में पहचान लिया था ।

मोहन—क्या ?

रत्ना—क्या कीजियेगा पूछ कर ? लेकिन, कमला आपसे नाराज़ नहीं होगी, यह मैं जानती हूँ। उन्हें नाराज़ करने का दूसरा तरीक़ा है ।

मोहन—कौनसा ?

रत्ना—फिर समझियेगा । चलिये, भैया बुला रहे हैं । (दोनों जाते हैं)

पर्दा गिरता है ।

चौथा दृश्य

[रायबहादुर का कमरा । रायबहादुर, कैलाश, डा० प्रकाश और माणिकचंद बैठे हैं ।]

रायबहादुर—मैंने कहा था न कि इस तरह का रुख अख्तियार करने का नतीजा अच्छा न होगा । लेकिन तुम न माने, कैलाश ! इतने दिन से कारख़ाना बंद पड़ा है ! अगर गोपाल को हर्जाना दे ही देते तो क्या हर्ज था ?

कैलाश—गोपाल को हम क्यों हर्जाना देते बाबू जी ? मोहन ने उसकी टाँग ख़राब कर उसे बेकार बनाया है ।

रायबहादुर—यह अन्याय है कैलाश ! मोहन वैसा लड़का नहीं है । फिर भी उसकी टाँग टूटी थी या नहीं ?

कैलाश—टूटी थी तो बन भी जाती ।

प्रकाश—अगर ठीक से बिठाई जाती ! डाक्टर मोहन की लापरवाही से उसकी टाँग बिगड़ी है । गोपाल चाहे तो उन पर मुकद्दमा कर सकता है ।

रायबहादुर—डाक्टर प्रकाश, यह कहना आपका मोहन के प्रति प्रोफ़ेशनल जेलसी मात्र है । मोहन आप से कम पढ़ा नहीं है । और डाक्टर भी लायक है ।

प्रकाश—लायक डाक्टर भी भूल करते हैं रायबहादुर !

रायबहादुर—संभव है । परन्तु उसके लिए उन पर मुकद्दमा नहीं चलता । जानबूझ कर बदनीयती से भूल करने पर चलता है । मोहन अपने प्रोफ़ेशन में लाख रुपये के लिये भी वैसी भूल नहीं कर सकता यह मुझे पता है ।

कैलाश—तो क्या आप का कहना है कि हम मज़दूरों की माँगें पूरी कर दें—उनसे दब जाँय ?

रायबहादुर—मेरा कहना यही है कि अगर पहले ही उनसे नर्मी से पेश आते तो यह नौबत न आती ।

कैलाश—तो क्या मैंने ग़लती की ?

रायबहादुर—जल्दबाज़ी ज़रूर की ।

कैलाश—जब आप ही ऐसा कहेंगे तो मज़दूर क्यों झुकने लगे ? उन्हें तो और बढ़ावा मिलेगा ।

माणिकचंद—लेकिन जगदीश बाबू! अब मामला सिर्फ़ गोपाल के हर्जाने का नहीं है। वेतन वृद्धि की माँग भी है। यह हड़ताल तो होती ही, सिर्फ अभी न होकर कुछ दिन बाद होती।

प्रकाश—अच्छा ही हुआ, उनके दिमाग़ की खुमारी निकल जायगी। (हँसता है)

कैलाश—हाँ, उन्हें पता लग जायगा कि मालिक कौन है, वे या हम।

रायबहादुर—लेकिन इसमें कितने बेचारों की जान चली जायगी। सुनने में आया है कि तुमने अस्पताल भी बंद करवा दिया है।

कैलाश—जी हाँ। जो हमारे यहाँ काम नहीं करते, उन्हें मुफ्त दवा पाने का क्या अधिकार है।

रायबहादुर—बुरा किया बेटा!

कैलाश—आपको मेरी ही भूलें दिखाई देती हैं। उन बदमाशों की नहीं।

रायबहादुर—जो अपना होता है उसी पर न हमारा ध्यान रहता है। पराये की भूलें देख कर हम क्या करेंगे?

माणिकचंद—लेकिन जगदीश बाबू! सवाल तो यह है कि अब क्या होना चाहिये।

रायबहादुर—यही तो मैं आपसे पूछता हूँ! आजकल सरकार भी एजीटेशन से डरती है। कहीं कुछ बात उठी तो—

माणिकचंद—आप उस ओर से निश्चिन्त रहें। सरकार ऐसी बेवकूफ नहीं कि ख़ामख़ा आपको तंग करे।

कैलाश—फिर आप तो हैं ही ?

मणिकचंद—हाँ मैं तो हूँ ही। मुझ से जहाँ तक बन पड़ेगा मैं आप की सेवा में हाज़िर हूँ।

कैलाश—मोहन को हटा देने से हड़ताल खुल जायगी। वही तो फ़साद की जड़ है। लेकिन है चालाक, पुलीस के फंदे में नहीं आयेगा।

माणिकचंद—अरे भई! पुलिस तो हमारा दाहिना हाथ है।

कैलाश—तो वह दाहिना हाथ हिलाइये न। आप तो सब से परिचित हैं!

रायबहादुर—लेकिन क्या मोहन की गिरफ्तारी से हड़ताल खुल जायगी? क्या आप समझते हैं कि मजदूरों में जान ही नहीं है? मोहन की गिरफ्तारी उनमें ताज़गी भर देगी।

प्रकाश—रायबहादुर! जब मनुष्य भूखा होता है, तो उसके सिद्धान्त उसका साथ नहीं देते। तब उसे व्यावहारिक-दुनियाँ में आना पड़ता है—और व्यावहारिक दुनियाँ में सिद्धान्त कहाँ तक पेट भरेंगे?

रायबहादुर—आपने ठीक कहा, प्रकाश बाबू!

कैलाश—यह तो मानना होगा कि मोहन उनका नेता है।

रायबहादुर—यह कहो कि मोहन से तुम्हें चिढ़ है।

कैलाश—(तमक कर) तो क्या आप चाहते हैं कि मैं मोहन से दब जाऊँ?

रायबहादुर—यह मैंने कब कहा?

कैलाश—आप के कहने का तो यही मतलब हुआ।

रायबहादुर—यह तुम्हारे समझने की भूल है। मेरा कहना यही

है कि बिगड़ी बात को और बिगाड़ना बुद्धिमानी नहीं। मेरा क्या है, मैं तो पका फल हूँ! कब टपक पड़ूँ, कुछ ठीक नहीं। चीज़ तुम्हारी है, जैसे चाहो रखो!

(उठकर इधर उधर टहलने लगते हैं)

माणिकचंद—यह आप क्या कह रहे हैं जगदीश बाबू! आप तो मुझसे भी छोटे हैं।

रायबहादुर—(माणिकचंद के सामने रुक कर) माणिक बाबू! आपने मजदूरों से बातचीत की है? उनका क्या रुख है, कुछ पता लगा? आपतो एम. एल. ए. भी हैं, उन्हें समझा सकते हैं।

माणिकचंद—बातचीत की तो नहीं पर आज जाऊँगा ज़रूर। अगर आप चाहें तो...

रायबहादुर—हाँ, आप एक दफ़ा उन से बात कर देखें। मैं नहीं चाहता कि यह मामला तूल पकड़े। जल्दी ही समझौता हो जाना हमारे सब के हक में अच्छा है।

कैलाश—समझौता?

रायबहादुर—चुप रहो बेटा! मैं बूढ़ा हुआ, कुछ तो मेरे अनुभव का लिहाज़ करो। और आप—डाक्टर प्रकाश! डिस्पेन्सरी खोल दें। जिस को दवा की ज़रूरत हो दें। और एक दफ़ा मज़दूर लाइन्स का चक्कर भी काट लें।

कैलाश—लेकिन, बाबूजी! यह तो......

रायबहादुर—मानवता का काम होगा बेटा!

प्रकाश—वहाँ तो डाक्टर मोहन है ही।

कैलाश—(बिगड़ कर) तो मज़दूरों में मेरी इज़्ज़त क्या रह जायगी ? आप मुझे अपमानित करने पर तुले हैं।

रायबहादुर—(कैलाश के कंधे पर हाथ रख कर) इसमें अपमान कैसा बेटा ? लड़ाई है.—लड़ो। परन्तु इन्सानियत के तरीके छोड़ कर नहीं।

कैलाश—(मान भरे स्वर में) जैसी आपकी इच्छा।

माणिकचंद—(उठते हुए) तो जगदीश बाबू, मैं आज ज़रूर जाऊँगा। देखूँ वे लोग मेरी बात सुनते हैं या नहीं।

रायबहादुर—कृपा होगी (हाथ मिलाकर माणिकचंद का प्रस्थान)

कैलाश और प्रकाश—(उठते हुए) तो हम लोग भी चलें।

(प्रकाश नमस्कार करता है। दोनों जाते हैं)

रायबहादुर—एक ओर बेटे की ज़िद, दूसरी ओर बेचारे मज़दूर! समझ में नहीं आता क्या करूँ (हाथ पर सिर रख कर सोचने लगते हैं। कुछ देर बाद कमला का प्रवेश।)

कमला—(उत्तेजित स्वर में) बाबूजी!

रायबहादुर—(सिर उठा कर उसकी ओर हाथ बढ़ाते हैं) आ बेटी! क्या है ?

कमला—बाबूजी!

रायबहादुर—क्या हुआ बेटी! किस पर गुस्सा है ?

कमला—सब आप को गाली देते हैं।

रायबहादुर—कौन सब ?

कमला—मज़दूर। अभी गई थी मैं स्कूल देखने तो लड़कियाँ मेरी ओर उंगली उठा उठा कर कहती थीं कि उसी निर्दयी की बेटी है।

रायबहादुर—(साँस खींच कर) निर्दयी की बेटी ! उफ़् !

कमला—(अचानक रुआँसी होकर) हड़ताल खुलवा दीजिये बाबू जी।

रायबहादुर—मैं क्या करूँ बेटी ?

कमला—आज रधिया दाई भी नहीं आई। उसका लड़का भी हड़तालियों में है, सुना है कि मर रहा है।

रायबहादुर—मर रहा है ?

कमला—हाँ। बीमार था, शायद नये डाक्टर ने दवा नहीं दी। क्या हड़तालियों को दवा भी नहीं देते ?

रायबहादुर—मैंने कह दिया है कि दवा दी जायगी।

कमला—(रायबहादुर की पीठ पर हाथ रख कर) अच्छा किया बाबू जी ! बेचारे बड़े दुखी हैं।

रायबहादुर—तू जाती है वहाँ, बेटी ?

कमला—सब मुझसे दूर भागते हैं।

रायबहादुर—उसकी परवाह मत कर। जाया कर। जिसे जिस चीज़ की ज़रूरत हो दिया कर। समझी।

कमला—अच्छा, पर अगर हड़ताल ही टूट जाय तो ?

रायबहादुर—(उठते हुए) तुझे इस झगड़े में पड़ने की ज़रूरत नहीं, बेटी ! तू अपना काम कर। (कमला की पीठ थपकाते हैं) ग़रीबों पर दया करना ही तो तेरा काम है।

कमला—लेकिन गरीब रहें ही क्यों ? मोहन बाबू कहते थे—

रायबहादुर—मोहन ! आया था क्या ?

कमला—(लज्जित होकर) नहीं।

रायबहादुर—हूँ ! जाने दे तुझे इन झगड़ों से क्या ? चल।

(दोनों जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

पाँचवाँ दृश्य

[कुछ मजदूरों और माणिकचंद का बातचीत करते हुए प्रवेश]

माणिक—समझे न भाई ! हड़ताल तो तुम लोगों की शक्ति को ही नष्ट करती है। तुम्हारे देश के उद्योग धंधों को हानि पहुँचाती है।

एक मज़दूर—माणिक बाबू ! आपतो पढ़े लिखे हैं, समझदार हैं। आप भी ऐसा कहते हैं ?

माणिक—पढ़ा लिखा हूँ—कुछ समझ है। इसी लिये ऐसा कहता हूँ। मैं ही क्या—हर कोई यही कहेगा। गान्धी जी को तो तुम लोग मानते हो न ? वे भी कहते हैं कि तुम लोग यह समझो कि कारखाने तुम्हारे हैं।

एक मज़दूर—तो क्या उसके लिये यह ज़रूरी नहीं कि हमारी भी उन्नति हो ? क्या यह ज़रूरी नहीं कि हमारे रहन सहन के सुधार के लिये हमें पूरी तनख़ाह मिले ? क्या हम लोग आदमी नहीं ?

माणिक—यह कौन कहता है कि तुम आदमी नहीं हो ?

एक मजदूर—मज़दूरी नहीं दी जाती। हमारे बच्चे भर पेट भोजन नहीं पाते। हमारी औरतें असमय में ही स्वास्थ्य खो बैठती हैं। हम लोग जानवरों की तरह काम करने पर भी कुछ कमा नहीं पाते !

बुढ़ापा आने पर हमारी क्या दशा होगी ? या काम छूट जाने पर हमारा क्या होगा ?

माणिक—लेकिन भई, अगर जो पाते हो उसे ही समझ कर खर्च करो तो क्या काम न चले ? तुम लोग ताड़ी पीना छोड़ दो, जुआ छोड़ दो, तो क्या तुम्हारे बच्चे भरपेट भोजन न पाँय ?

एक मजदूर—ताड़ी क्या शौक से पीते हैं ? दिन भर की मेहनत के बाद बच्चों का रोना धोना अच्छा नहीं लगता । ताड़ी पी लेने पर उससे तो छुटकारा मिल जाता है ।

माणिक—सोचो तो सही कितना बुरा करते हो ! अगर उसी पैसे से बच्चों को कुछ चबेना खरीद दो तो वे क्यों रोयें चिल्लायें ।

एक मजदूर—बेकारी, बुढ़ापा—इन में क्या होगा ?

माणिक—फज़ूल जो खर्च करते हो उसे जमा करो तो बेकारी में काम आय । फिर, ठीक से काम करोगे तो क्यों कोई निकालेगा ? बेकारी क्यों आवेगी ?

दूसरा मजदूर—लेकिन, माणिक बाबू ! इन्सान सिर्फ इस लिये मेहनत नहीं करता कि पेट पाल सके । वह तरक्की भी करना चाहता है । समाज में उन्नत होना चाहता है । मोहन बाबू ने हमें बताया है कि हम सिर्फ पेट पालने भर को ही पैदा नहीं करते हैं । उससे कई गुना अधिक पैदा करते हैं जो कि मालिक मुनाफ़े के तौर पर ले लेते हैं । उस मुनाफे का हिस्सा हमें भी मिलना चाहिये ताकि हम अपने बच्चों को पढ़ा लिखा सकें—आदमी बना सकें ।

माणिक—लेकिन मोहन ने तुम्हें यह नहीं बताया कि मालिक ने

जो रुपया लगाया है सो क्यों ? क्या उसके लिये उसे कुछ नहीं मिलना चाहिये ? क्या उसकी ज़रूरत ही नहीं ? मोहन ने तुम्हें आधी बातें बताई हैं। जानते हो आधा ज्ञान भयानक होता है—नीम हकीम खतराए जान।

दूसरा मजदूर—लेकिन मोहन बाबू...

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—कौन मेरा नाम ले रहा है ?

मजदूर—(खुश हो कर) लीजिये, मोहन बाबू खुद आगये ! आप उन्हें ही समझा दीजिये।

मोहन—माणिक बाबू हैं ? कहिये माणिक बाबू आप इधर कैसे भूल पड़े ?

माणिक—हड़ताल की खबर सुन कर स्थिर न रह सका। नाहक इतनी जानें दुख उठा रही हैं।

मोहन— नाहक क्यों। हक के लिये ही तो हैं।

माणिक—दूसरे के हक का भी तो ध्यान होना चाहिये।

मोहन—दूसरों का हक कैसा ? क्या आप यह कहेंगे कि इन्हें मज़दूरी का भी हक नहीं ? उतनी मजदूरी जिससे इनका जीवन-यापन हो सके ?

माणिक—क्या उतनी मज़दूरी नहीं मिलती ?

मोहन—उतनी देता कौन है ? मुश्किल से एक शाम खा पाते हैं।

माणिक—तो और क्या चाहते हैं ?

मोहन—क्या एक शाम खाना ही इनके जीवन का उद्देश्य है ? उतना खाना कि वे काम लायक ही रह सकें। दिन भर काम करने के बाद

मानसिक, या नैतिक, उन्नति शिक्षा या मनोरंजन के लिये कुछ नहीं चाहिए ?

माणिक—मैं तो समझता हूँ कि अगर तुम उनके दिमाग़ में यह सब न भर कर उन्हें कमख़र्ची और सन्तोष सिखाते तो अच्छा करते। काम में उन्हें तरक्की का अवसर मिलता ही है। उसका सदुपयोग करें तो क्या उनका जीवन सुखी न हो ? जिस समय देश में अपनी सत्ता कायम हो रही है उस समय इस तरह के झगड़े खड़े करके देश की औद्योगिक स्थिति को बिगाड़ना देश से शत्रुता करना है। मुझे दुःख होता है तुम्हारी बातें सुनकर ! तुम समझदार हो। इन बेचारों को समझा दो कि व्यर्थ हड़ताल जारी न रखें। क्यों अपना ही नुकसान कराते हैं ? कारखाना बंद रहने पर देश का कितना नुकसान होता है यह तुम से छिपा नहीं।

मोहन—देश-देश करके तो इतने दिन इन लोगों को भूल में रखा। अब इन बातों से भुलाये रखना संभव नहीं।

माणिक—तो क्या हड़ताल करा के ही इनका फ़ायदा है ? या तुम नहीं जानते कि प्रति वर्ष कितने करोड़ रुपये ये लोग व्यसनों में फूँक देते हैं। उस रुपये को बचा कर क्या ये अपना सुधार नहीं कर सकते ?

मोहन—क्या आप समझते हैं कि इनकी मुसीबतों की जड़ व्यसन और शराबखोरी ही है ?

माणिक—निश्चय, बहुत बड़ी हद तक।

मोहन—आप ग़लत समझते हैं। यह हमारा दिल बहलाना मात्र है। सच बात तो यह है कि हमने इन्हें ऐसी परिस्थितियों में डाल रखा है कि ये लोग इन व्यसनों के शिकार बनें।

माणिक—सो कैसे ?

मोहन—हमने उनसे उन्नति के सभी साधन छीन रखे हैं। हम उन्हें इतना मौका ही नहीं देते कि वे उन्नति कर सकें, या उच्च विचारों की ओर ध्यान दे सकें। अपने कारखानों में हमने उनका जीवन क्षुद्र, पतित और संकुचित कर दिया है। उनकी आत्मा को हरदम बेकारी, ग़रीबी और भुखमरी का डर दिखा कर कुचल दिया है। उनकी स्त्री बच्चों को उनकी आँखों के सामने बीमार पड़ने और मरने पर मजबूर किया। जी तोड़ मेहनत के बाद भी उनको दवादारू के साधन नहीं दिये जाते। और तब हम दुःख प्रगट करते हैं कि जो धन उसे मेहनत से नहीं मिला वह धन वह जुआ खेल कर किस्मत के ज़ोर से लेना चाहता है। हम इस बात को बुरा मानते हैं कि वह ताड़ी पी कर अपना दुःख भुलाना चाहता है। उसके साथियों के सामने उसकी निन्दा करते हैं। उसे बुराइयों से बचने का उपदेश करते हैं, और कहते हैं कि मेहनत करो, मेहनत। ताकि हमारा कारखाना चलता रहे, ताकि हमारा मुनाफ़ा मिलता रहे, और हम ऐश कर सकें। यही आपका उपदेश है ?

माणिक—तुम भूल करते हो मोहन! मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि वह फिज़ूलखर्ची न करके अगर बुद्धिमानी से काम ले तो हर मज़दूर अपना पारिवारिक जीवन सुधार कर सुखमय बना ले। तब उसे ताड़ी आदि की ज़रूरत ही न रहे।

मोहन—पारिवारिक जीवन ! मज़दूर का पारिवारिक जीवन है कहाँ ? एक छोटा सा वायु-प्रकाश-हीन घर—मानवरूपी पशुओं से भरा हुआ ! पति कहीं पर काम करे, पत्नी कहीं, और समझदार लड़के

लड़कियाँ और कहीं ! शाम को थके माँदे आना। बच्चों का चख-चख। उससे बचने के लिए गाली गलौज और मारपीट। यही न है उसका पारिवारिक जीवन, वह भी अनिश्चित। उसका जीवन भोंपू से बँधा है। भोंपू बजते ही काम पर जाना, भोंपू बजने पर खाना। वह किराये का मज़दूर है। जो कोई उसको किराया दे सके—उसका गुलाम है। आप चाहते हैं कि वह उसी गुलामी को अहोभाग्य समझे।

माणिक—नहीं।

मोहन—तब ?

माणिक—मैं चाहता हूँ कि वह मालिकों को समझा कर उनका हृदय परिवर्तित कर दे, ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं।

मोहन—माणिक बाबू! अगर इनकी इतनी दुर्दशा देखकर भी मालिकों का दिल न पसीजा तो फिर पसीजने से रहा।

माणिक—तो तुम हड़ताल जारी रखने पर तुले हो ?

मोहन—आपने कैलाश बाबू को क्यों नहीं समझाया ? वे चाहें तो हड़ताल आज ही टूट जाय। मज़दूरों की माँगें जायज़ हैं, पूरी कर दें।

माणिक—वहीं से आ रहा हूँ। ख़ैर, मेरा काम समझाना था।

मोहन—सो आपने कर दिया। इसके लिए आपको धन्यवाद है। (हाथ जोड़ता है)

माणिक—लेकिन तुम लोगों से यही कहूँगा कि ग़लती कर रहे हो। अब भी सुधार लो।

मोहन—ग़रीब तो हमेशा ग़लती करता है। उसकी तो सबसे बड़ी ग़लती यही है कि वह ग़रीब है।

माणिक—यह न कहना कि मैंने समझाया नहीं था।

मोहन—आप ख़ातिर जमा रखें।

(माणिक का प्रस्थान। मज़दूर नमस्कार
प्रणाम आदि कहते हैं।)

पर्दा गिरता है।

छठा दृश्य

(कैलाश और डाक्टर प्रकाश बैठे हैं—सिगरेट
का धुआँ उड़ रहा है)

प्रकाश—कैलाश, मज़दूरों का ढंग तो अजब देखता हूँ, बीमार हैं, दवा नहीं लेंगे।

कैलाश—अरे भई, सब उसी मोहन की बदमाशी है।

प्रकाश—लेकिन सुना है कि वह खुद भी आजकल भूखा रहता है। जो कुछ पाता है किसी मज़दूर के बच्चे को दे देता है। मैं तो उसे देख कर शर्म से कट जाता हूँ।

कैलाश—तुम्हारी सेंटिमेंटैलिटी है।

प्रकाश—बचपन से ही, तुम्हें याद होगा, मेरी तो उससे नहीं बनती थी। स्वर्णरेखा के किनारे मैंने उसे कई बार पीटा भी है।

कैलाश—मार खाने लायक काम ही करता था।

प्रकाश—पर अन्त में बात उसी की रहती थी कैलाश!

कैलाश—इस बार उसकी बात नहीं रहेगी। इस बार जैसे हो उसे रास्ते से हटाना पड़ेगा।

प्रकाश—उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है।

कैलाश—मेरा क्या बिगाड़ा है ? उसके सामने मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। क्या यह काफी नहीं ? जहाँ जाओ उसी का नाम। बाबू जी भी तो उसी का पक्ष लेते हैं। देखा ही है तुमने।

प्रकाश—और कमला भी।

कैलाश—सभी कोई। मैं इसे नहीं सह सकता, उसे हटाना ही पड़ेगा।

प्रकाश—कैसे ?

कैलाश—मैंने एक उपाय सोचा है, अगर तुम मदद दो तो—

प्रकाश—कहो भी।

कैलाश—उसको कुछ रुपये दिये जाँय—हड़ताल के लिये। और फिर चोरी लगा कर गिरफ्तार करवा दिया जाय।

प्रकाश—रुपये वह तुम से लेगा ही क्यों ?

कैलाश—मुझ से नहीं। तुम्हारे बाबूजी से तो ले लेगा ?

प्रकाश—(सोच कर) हो सकता है।

कैलाश—होगा ही। और फिर मैं उसे सज़ा दिलवा ही दूँगा।

प्रकाश—चोरी कैसे सिद्ध होगी ?

कैलाश—रुपये उसे सुबह दिये जाएँ। सुबह ही मैं उसे हड़ताल पर विचार-विमर्श करने के लिये बुलाऊँ और अपने कमरे में अकेला छोड़ कर चला जाऊँ। उसके जाते ही पुलीस को ख़बर कर दूँ। नोटों के नंबर रहेंगे ही,... बस...

प्रकाश—हो सकता है—अगर बाबूजी तैयार हो गये तो।

कैलाश—उन्हें तैयार करना तुम्हारा काम है। वे रुपये दें और

यह वचन लेंले कि मोहन उनका नाम प्रगट नहीं करेगा।

प्रकाश—अगर अदालत में मोहन ने उनका नाम ले दिया तो?

कैलाश—मोहन वचन देकर फिर नहीं सकता, यह मुझे पता है।

प्रकाश—लेकिन अगर ले दिया तो बड़ी बदनामी होगी।

कैलाश—मोहन कभी उनका नाम नहीं लेगा। मैं जानता हूँ उसे। वह जान बचाने के लिये भी वचन-भंग नहीं कर सकता।

प्रकाश—और हम ज़रा सी बात के लिये झूठ बोलते हैं!

कैलाश· भई व्यवहार है। दुनियाँ में इसके बिना काम चलता है?

प्रकाश—कुछ कह कर आत्मा को सन्तोष दे लो पर बात सत्य यही है कि मोहन के समक्ष हम क्षुद्र और पतित हैं।

कैलाश—फालतू बातें हटाओ। मुझे और बहुत काम हैं। बोलो—करोगे मदद? दूँ रुपये?

प्रकाश—दो। जहाँ एक पाप, वहाँ हज़ार भी सही।

कैलाश—बैठो मैं लाता हूँ। कितने हों?

प्रकाश—कम से कम हज़ार तो हों।

कैलाश—अच्छा। नंबर भी लिख लूँ।

(जाता है दूसरी ओर से कमला आती है)

कमला—(प्रकाश को देख कर ठिठकती है) मैंने समझा था कि भैया अकेले ही होंगे। (प्रकाश खड़ा हो जाता है)

प्रकाश—मैं ऐसे ही चला आया था, कमला! आओ, बैठो।

कमला—(मेज के पास खड़ी रहती है) डाक्टर साहब! आपने—

प्रकाश—पहले तो तुम प्रकाश कहती थीं।

कमला—वह बचपन था, मैं मूर्ख थी।

प्रकाश—या मैं मूर्ख हूँ अब? कमला! क्या बचपन के दिन एकदम ही भूल गईं? स्वर्णरेखा का तट! हमारा खेल! सब कुछ कितना मधुर था!

कमला—बीती बातें याद रख कर क्या होगा? खैर, मैं आपसे पूछना चाहती थी कि आप मज़दूरों की ओर जाते हैं न?

प्रकाश—जाता तो हूँ किन्तु कोई दवा लेने को तैयार नहीं होता।

कमला—क्यों?

प्रकाश—मैं क्या जानूँ।

कमला—प्रकाश बाबू! मुझ से तो वे लोग कुछ लेंगे नहीं। क्या आप किसी तरह उन्हें कुछ दे नहीं सकते?

प्रकाश—हड़ताल खुल जायगी दो एक दिन में।

कमला—क्या भैया उनकी माँगें मान लेंगे?

प्रकाश—मज़दूर स्वयं अपनी माँगें लौटा लेंगे।

कमला—कभी नहीं, प्रकाश बाबू! आप उन्हें नहीं जानते? आपका जीवन मज़दूरों में रहने लायक नहीं है! आप उन्हें पहचानते नहीं। शहर में ही रहते तो अच्छा था। यहाँ बेकार आये।

प्रकाश—न कैसे आता?

कमला—क्यों! यहाँ क्या था जो आना ज़रूरी था?

प्रकाश—तुम थीं, कमला?

कमला—प्रकाश बाबू! माफ़ करेंगे। इस तरह की बातें मैं नहीं सुनना चाहती। नमस्कार! (प्रस्थान)

(कैलाश का प्रवेश)

कैलाश—लो, डेढ़ हज़ार हैं। और सब सौ सौ के। सौ सौ के नोटों में झट पकड़ा जायगा।

प्रकाश—(लेकर) सो तो है।

कैलाश—देखना; मोहन को सुबह मिलें। यहाँ आते वक्त या तुरत बाद। ताकि पुलिस पहुँचे तो उसके पास माल बरामद हो जाय!

प्रकाश—अच्छा। (नोट बैग में रख लेता है)

कैलाश—उसे जेल में भेज कर ही चैन मिलेगा।

प्रकाश—तो जाता हूँ। बाबू जी से बात करनी होगी।

कैलाश—हाँ, जाओ! खबर कर देना मुझे।

(हाथ मिलाकर प्रकाश जाता है)

कैलाश—अब देखूँगा।

पर्दा गिरता है।

सातवाँ दृश्य

[गोपाल का घर। गोपाल की स्त्री खाट पर पड़ी है। गोपाल हाथ पर पट्टी बाँधे, लँगड़ाता हुआ, ठेके के सहारे आता है। रमा एक ओर बैठी है।

गोपाल—विपत्ति अकेली नहीं आती। दर्दमारों को सताने में उसे भी मज़ा मिलता है!

रमा—भैया, दवा मँगा लेते।

गोपाल—कहाँ से मँगा लेता ?

रत्ना—अस्पताल से ।

गोपाल—उसी का अस्पताल न, जिसने मेरी यह हालत की है । जिसने तुम्हें बदनाम करके नौकरी से निकाल दिया । कभी नहीं ।

रत्ना—लेकिन......

गोपाल—लेकिन क्या ? मर ही न जायगी ? (एक ओर बैठ जाता है) लेकिन बहन ! अन्यायी से दवा की भीख भी क्यों माँगूँ ?

रत्ना—जान बचाने के लिये । (रोगिणी खाँसती है—मुँह से खून गिरता है) देखो भैया । (रोती है)

गोपाल—(मुँह फेर कर आँसू पोछता है) चुपचाप सह ले बहन ।

रत्ना—भाभी !

रोगिणी—हाँ ! (धीरे से) रत्ना ! जान से इज़्ज़त बड़ी होती है । रो मत । मुझे मरने का दुःख नहीं । अफसोस इस बात का है कि तुम लोगों को मुसीबत में छोड़ जाऊँगी । (रत्ना रोती हुई रोगिणी की छाती में मुँह छिपा लेती है, वह उसके सिर पर हाथ फेरती है ।)

रत्ना—भगवान् कहाँ हैं जो इतना अन्याय सह लेते हैं !

गोपाल—भगवान् ! भगवान् को क्या मालूम कि दुःख क्या है ? वे क्या जानें बीमारी का हाल ? वे कभी भूखे थोड़े रहे हैं जो भुखमरों पर दया करेंगे ।

रोगिणी—भगवान् को क्यों कोसते हो ? भगवान् अच्छा ही कर रहे हैं । तुम लोगों के सिर से बोझ उतर जाय ।

गोपाल—बोझ ? क्या तू हमारे सिर पर बोझ है ? हमारी किस बात या काम से तूने यह समझा ?

रोगिणी—लेकिन मेरे कारण......

गोपाल—व्यर्थ की बातें न सोच। निश्चिन्त रह। जो होना है सो तो होगा ही।

(माँ का एक कटोरा लिये हुए प्रवेश)

माँ—(रोगिणी के पास जाकर) ले बहू! पी ले!

रोगिणी—क्या है माँ?

माँ—लपसी, थोड़ा सा आटा माँग लाई थी।

(रत्ना रोगिणी को सहारा देकर बैठती है)

रोगिणी—माँ! मुझे ज़रा भी इच्छा नहीं है।

माँ—पीले बेटी, कुछ ताकत आयगी।

रोगिणी—अब ताकत आ कर क्या होगा माँ?

माँ—पीले, क्यों ख़ामख़ा दिल दुखाती है!

रत्ना—पीले भाभी, मेरी कसम! (रोगिणी पी लेती है)

रोगिणी—तुम लोग...

माँ—हमारी फ़िक्र न कर बेटी! भगवान् पार लगायेंगे।

गोपाल—उफ़। अब नहीं सह सकता। यह ग़रीबी! इससे तो चोरी डकैती ही अच्छी। (चला जाता है)

माँ—मैं तो कहती थी बेटा, इस हड़ताल के फेर में मत पड़ो, लेकिन कौन सुनता था?

रोगिणी—तो क्या दुःख उठाते रहते माँ? हक के लिए मुँह भी न खोलते।

माँ—अब कौन सा सुख है? तू क्या समझेगी बहू। माँ

का दिल क्या होता है। मेरी आँखों के सामने मेरे बच्चे भूखे पड़े हैं। उन्हें खिलाने के लिये मेरे पास कुछ नहीं। छाती सूखी है, भीतर आग जलती है। भगवान ने बुढ़ापे में यह क्या लिखा था ? (रोती है)

रत्ना—माँ, हम लोग तो दुखी नहीं हैं।

माँ—दो रोज़ से पेट में अन्न नहीं गया। कहती है—दुखी नहीं हैं।

रत्ना—हाँ माँ, भूखे हैं सही, किन्तु यह सन्तोष तो है कि अन्याय के सामने झुके नहीं।

माँ—भाड़ में जाय ऐसा सन्तोष।

(बाहर से खटखटाने का शब्द)

रत्ना—शायद डाक्टर बाबू आये हैं...(रोगिणी लेट जाती है। सिर पर कपड़ा ठीक कर लेती है। (एक झोला लिये कमला का प्रवेश)

कमला—क्या मैं आ सकती हूँ ?

रत्ना—आइए। (कमला बीच कमरे में आ जाती है। सब चुप हैं।)

कमला—यही तुम्हारी भाभी हैं ? क्या फिर बीमार पड़ गईं ?

माँ—(उत्तेजित स्वर में) फिर बीमार पड़ गईं ? अच्छी कब हुई थी। ज़रा हालत सँभली, तो तुम लोगों ने गोपाल की जान ले लेनी चाही। वह ज़रा सँभला तो यह हड़ताल। अब क्या देखने आई हो ? क्या हमें भूखे देखकर तुम्हें सन्तोष होगा ? तो देख लो—ये है मेरी बेटी (दिखाती है) दो रोज़ की भूखी।

रत्ना—माँ, क्या बकती हो ? चुप करो।

माँ—चुप करूँ ? तेरे कहने से ? या इनके डर से ? बड़े आदमी

की बेटी हैं तो अपने घर में। यहाँ क्या करने आई हैं? देख लें कैसे भूख से मरते हैं! खुश हो लें कि अपने फ़ायदे के लिये कितनों की जान ली जा रही है!

कमला—उफ़! (चारों ओर घबड़ा कर देखती है)

रत्ना—आप माँ की बातों का ख़याल न करें। वे दुःख से विचलित हो रही हैं। (माँ से) तू जा माँ!

कमला—मैं आई थी कि—

माँ—क्यों आई थी?

कमला—शायद आप लोगों की कोई सेवा कर सकूँ। रत्ना, तूने मुझे क्यों न ख़बर दी कि हालत ऐसी हो रही है।

रत्ना—आप से कह कर क्या होता?

कमला—मुझ से जहाँ तक बन पड़ता...

रत्ना—आप से? लेकिन आपको तो कुछ अधिकार नहीं।

माँ—भाई जान ले और बहन मरहम पट्टी करने आवे! वाह! अजब तमाशा है! (रत्ना माँ को बाहर हटा देती है)

कमला—रधिया से मालूम हुआ है था—तुम्हारी भाभी की बीमारी का। उनके लिये कुछ लाई थी। (झोले से फल निकालती है) लो।

रत्ना—(पीछे हट जाती है) क्षमा करें!

कमला—रत्ना! तुम भी मुझ से घृणा करोगी?

रत्ना—घृणा नहीं करती। पर आप से कुछ ले भी नहीं सकती।

कमला—क्यों? क्या मैं तुम्हारी सखी नहीं। (फल नीचे ज़मीन पर रख देती है)

रत्ना—आपके भाई के एक मज़दूर की बहन कैसे आपकी सखी .

हो सकती है ?

कमला—रत्ना ! भूल जाओ उन बातों को। माफ़ नहीं करोगी ?

रत्ना—माफ़ होने लायक आपने किया ही क्या है ? हम पर दया ही करती आई हैं। अब भी इस दया के लिये धन्यवाद है। पर आप हमें क्षमा करें।

कमला—इनकी बीमारी का ध्यान करो।

रोगिणी—मेरी बीमारी फल खाकर नहीं छूटेगी, मैं तो मरूँगी ही। भीख के फल खाकर क्यों मरूँ ?

(गोपाल फिर आता है। कमला को देख कर नमस्कार करता है।)

गोपाल—देखने आई हैं हम लोगों की दुर्दशा ? देख लीजिए। और कैलाश बाबू से कह दीजिएगा कि इतना सता कर भी उनकी इच्छा पूरी नहीं होगी। (फल देखता है) यह क्या ? (ठोकर मारकर उन्हें एक ओर फेंक देता है) अभी तक भीख माँग कर नहीं खाया है। जिसे दवा भी नसीब न हो वह फल खाकर क्या करेगी। (कमला रो उठती है)

कमला—मेरा अपमान करके आपको क्या मिलेगा गोपाल बाबू ?

गोपाल—अपमान ? आपका अपमान मैं कर रहा हूँ ? मैं गरीब हूँ सही लेकिन इन्सानियत से अभी इतना नहीं गिरा कि औरतों का अपमान करूँ। वह मालिकों को ही शोभा देता है।

कमला—मैंने कब आपका अपमान किया ?

गोपाल—आपने नहीं तो आपके भाई ने सही।

कमला—कब ? कैसे ?

गोपाल—क्या कीजिएगा जान कर ?

कमला—तो आप भाई के दोष का दंड मुझे देना चाहते हैं।

गोपाल—दंड हम क्या देंगे ? दंड देंगे भगवान—अगर हैं तो !

रत्ना—भैया ! क्या बकते हो ? (कमला से) आप बुरा न मानें। और अगर अभी इस ओर न आया करें तो ठीक हो। आपका जीवन सुख के लिए बना है, दुख देखने के लिए नहीं। हमारा क्या है, समय कट ही जायगा।

कमला—रत्ना, मेरे साथ अन्याय मत करो। (रोगिणी की ओर देखकर) अच्छा नहीं होगा।

गोपाल—क्या होगा ? और सताना चाहें, तो जाइये, कैलाश बाबू से ही कह दीजिएगा— जो करना हो कर लें हम डरते थोड़े हैं ?

कमला—तो हम भी नहीं डरते। (आँसू पोंछते हुए) आपको अपमान ही करना है तो कर लें। लेकिन नतीजा बुरा होगा।

गोपाल—कोड़ों से पिटवाइएगा ? यह भी कर लें। अभी तो हाथ पाँव ही टूटे हैं, सिर आप तुड़वा दें। या कैलाश बाबू से कह दें वही कर लेंगे।

कमला—अपना कसूर भैया के सिर ?

गोपाल—मेरा कसूर ? रस्सी मैंने काटी थी या कैलाश बाबू ने ? पूछियेगा उनसे।

कमला—झूठ !

गोपाल—जी हाँ, क्योंकि हम ग़रीब हैं। हमारी इज़्ज़त नहीं, जान का मूल्य नहीं, क्योंकि हम ग़रीब हैं। आप यहाँ आईं ही क्यों ?

जाइए। अमीरी ठाठ में वहीं आपको सत्य मिलेगा। यहाँ गरीब की झोंपड़ी में आकर क्यों अपनी आत्मा व्याकुल करती हैं ? जाइये !

कमला—जाती हूँ ..(दुःख क्रोध से विचलित हो चली जाती है)

(कुछ देर बाद मोहन का प्रवेश)

मोहन—(सबकी भंगी देख) क्या बात है गोपाल ? (गोपाल चुप है) रत्ना ! क्या हुआ है ?

रत्ना—(लज्जित सी) कुछ नहीं।

मोहन—कुछ नहीं कैसे ? तुम लोग बोलते क्यों नहीं ? (फल देखकर) यह फल (उठाता है) कौन लाया था ? (उत्तर न पाकर) माँ ! ओ माँ !

(माँ आती है)

माँ—क्या है मोहन बाबू ?

मोहन—कौन आया था ?

माँ—वही आई थी हमारी हालत देखने !

मोहन—वही कौन ?

माँ—रायबहादुर की बेटी।

मोहन—कौन कमला ? कमला आई थी ?

रत्ना—हाँ।

मोहन—समझा। वह बेचारी आई थी करुणा से प्रेरित होकर, तुमने अपमान करके निकाल दिया। है न ?

गोपाल—हम करुणा नहीं चाहते।

मोहन—लेकिन गोपाल ! इसमें उसका क्या दोष ? और रत्ना !

तुम तो उसे पहचानती थीं। तुम से यह आशा न थी।

(सब चुप रहते हैं, मोहन रोगिणी को देखता है)

मोहन—इनका क्या हाल है अब ?

माँ—हाल क्या होगा, वैसी ही है।

मोहन—दवा लाना ही होगा। जाता हूँ डा० प्रकाश से मिलने।

माँ—मोहन बाबू! हड़ताल और कब तक चलेगी ? अब तो भूखों मरने की नौबत आ गई है।

मोहन—धीरज धरो माँ! फैसला हो ही जायगा। आज तो यूनियन ने आस पास के देहातों से चंदा भी इकट्ठा किया है।

गोपाल—चंदे से कब तक चलेगा ?

मोहन—कहीं से तो रुपये का प्रबन्ध करना ही होगा।

गोपाल—देखता हूँ भुखमरी सब को काम पर लौटा देगी। मजदूरों की एक सभा तो हो रही है, पीपल तले—

मोहन—अच्छा ? मुझे मालूम नहीं।

गोपाल—कुछ लोगों की राय है कि हड़ताल तोड़ दी जाय। इसी पर विचार होगा।

मोहन—जाऊँ, देखूँ।

माँ—हाँ बेटा; जाओ, समझा बुझा कर हड़ताल तोड़ दो। बच्चे खाने को तो पावें!

मोहन—जाता हूँ माँ। (जाता है)

माँ—जुग जुग जीओ बेटा।

पर्दा गिरता है

आठवाँ दृश्य

[कुछ मजदूर आपस में बातें कर रहे हैं।]

पहला—भाइयो ! इतने दिन तो हो गये—और कब तक हड़ताल जारी रहेगी ?

दूसरा—जब तक हमारी माँगें पूरी न हो जायँ, तब तक।

पहला—अगर माँगें पूरी न हों, तो क्या इस तरह बैठे बैठे जान दे दें ? देख रहे हो—चारों ओर कितनी कठिन विपत्ति आई हुई है ? जिधर देखो उधर सूखा मुँह, पिचका पेट। बच्चों का रोना सुनकर मुझ से नहीं रहा जाता।

तीसरा—तो क्या करोगे ? काम पर लौट आओगे ?

पहला—नहीं, लेकिन......

तीसरा—इसमें लेकिन का स्थान कहाँ है ? या तो काम पर लौट जाओ या हड़ताल जारी रखो। दोनों विपरीत बातें हैं। इन में समझौता कैसा ?

पहला—मैं तो लड़के बच्चों के कष्ट का बयान कर रहा था।

तीसरा—बच्चों का कष्ट क्या करेगा ? बच्चे बच्चे कह कर क्या हम लोगों का दिल छूना चाहते हो ? हम दिल पर पत्थर रखे बैठे हैं। पीछे नहीं हट सकते—चाहे बच्चे रहें, चाहे जायँ।

पहला—तुम तो यह कहोगे ही, तुम्हारा कोई बच्चा नहीं है न ? दूसरों के बच्चे रहें या जायँ, तुम्हें क्या ?

दूसरा—अरे ! काहे झगड़ते हो ? क्या हड़ताल काफी नहीं कि आपस में भी झगड़ोगे ?

चौथा—साफ़ साफ़ कहो क्या कहना चाहते हो ?

तीसरा—कहेंगे क्या ? काम पर लौट जाना चाहते हैं, पर यह कहने में शर्म लगती है इसीलिये हिचकते हैं।

पहला—अपनी बात मैं स्वयं कह सकता हूँ तुम्हें बोलने की ज़रूरत नहीं।

तीसरा—तो कहो, मैं मना करता हूँ ?

पहला—यह तो स्पष्ट है कि अब कहीं से मदद की आशा नहीं। यूनियन वाले चंदा इकट्ठा करने की कोशिश करके हार गये...

तीसरा—तो क्या चंदे के भरोसे हड़ताल हुई थी ? तकलीफ थी, इसलिये हड़ताल हुई थी।

पहला—हमें क्या तकलीफ़ थी ?

दूसरा—क्यों ? क्या तुम्हें कोई तकलीफ़ न थी ?

चौथा—एक को तकलीफ़ थी तो सब को तकलीफ थी।

तीसरा—एक को क्यों ? क्या सब को पर्याप्त वेतन मिलता था या किसी तरह मुश्किल से गुज़ारा होता था ?

पहला—मजदूरी तो बढ़ा भी दी जाती। हड़ताल सच पूछो तो गोपाल की बात लेकर हुई है।

दूसरा—यह तो निमित्त मात्र हुआ, कष्ट कई दिन से बढ़ रहे थे।

चौथा—गोपाल से कैलाश बाबू को क्यों इतनी चिढ़ है ?

तीसरा—गोपाल से ही क्यों ? मोहन बाबू की भी तो हमारे ही कारण नौकरी गई। फिर भी देखते हो, कैसे जी जान से हम लोगों की मदद करते हैं !

दूसरा—सो तो है ही।

पहला—लेकिन फिर भी भूखों मरने की नौबत आ गई। तनखाह से तो मुश्किल से पेट भरते थे। गाढ़े समय के लिये कहाँ से जमा करते?

तीसरा—यही तो मैं भी कहता हूँ। तनख़ाह इतनी कम है कि हमारा काम नहीं चलता। इसीलिये उसका बढ़ाया जाना ज़रूरी है। यह माँग क्या नाजायज़ है?

पहला—माँगें तो सभी जायज़ हैं पर मालिकों से पूरा कराने की शक्ति कहाँ है? मालिकों को क्या? महीनों कारख़ाना बंद रहे, उनका खर्च चलता रहेगा, मरेंगे हम लोग।

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—कोई नहीं मरेगा भाई! घबड़ाओ नहीं, दो-चार दिन में फैसला हो जायगा।

पहला—कई दो-चार दिन तो हो गये मोहन बाबू!

मोहन—भाई धीरज रखो। मैं जाता हूँ रायबहादुर से मिलने। देखूँ वे क्या कहते हैं!

तीसरा—वे क्या कहेंगे? मालिक तो कैलाश बाबू हैं।

मोहन—यह न कहो। रायबहादुर हमारी बात सुनेंगे तो...

पहला—हाँ मोहन बाबू, अब फैसला करा दीजिये, हड़ताल कल से परसों तक नहीं चलेगी।

मोहन—क्यों भाई?

पहला—खाये बिना कब तक रहेंगे? कहीं से कुछ मिलता तो है नहीं।

मोहन—मदद कहीं से तो मिलेगी ही। मैं आज जाऊँगा कुछ न कुछ तो इकट्ठा कर ही लाऊँगा। तुम लोग धीरज रखो। न्याय हमारी ओर है तो विजय हमारी होगी ही।

सब मजदूर—(एक साथ) हाँ मोहन बाबू! कहीं से रुपये का प्रबन्ध कीजिए।

मोहन—ज़रूर करूँगा। जहाँ से भी हो सके, करूँगा। क्या रुपये के अभाव से हम लोग हार जायँगे? कभी नहीं!

(माणिक चंद का प्रवेश)

माणिकचंद—मोहन! तुम्हीं से काम था।

मोहन—आज्ञा कीजिये।

माणिकचंद—(मजदूरों की ओर देख कर) अलग ही कहूँगा।

मोहन—(मजदूरों से) तुम लोग जाओ भाई; हिम्मत न हारो। रुपया कहीं से आवेगा ही। (मजदूर जाते हैं)

मोहन—कहिये?

माणिकचंद—हड़ताल का क्या हाल है?

मोहन—रुपये के अभाव में टूटना ही चाहती है। आखिर कब तक भूखे प्यासे रहेंगे?

माणिकचंद—यह तो बुरी खबर सुनाई।

मोहन—क्या करूँ? यही हमारी सब से बड़ी कमज़ोरी है। गरीबी! देश की गरीबी ने ही हमें इस पतित अवस्था में डाल रखा है। उससे बचने के लिये हमारे पास साधन नहीं।

माणिकचंद—ऐसा न कहो मोहन! न्याय पक्ष हारता नहीं। अभी

कितना रुपया मिलने से काम चल जायगा ?

मोहन—दो चार दिन में फैसला हो जाना चाहिये। तब तक—हजार मज़दूर हैं, दो आना रोज़ भी खाँय तो भी काफ़ी चाहिए।

माणिकचंद—(जेब से नोट निकालता है) लो, पन्द्रह सौ हैं।

मोहन—(चकित होकर माणिक बाबू की ओर देखता है) माणिक बाबू! आप......

माणिकचंद—(ज़रा हँस कर) क्यों मोहन ? क्या मैं इस लायक भी नहीं ?

मोहन—माणिक बाबू! आपने मेरी इज़्ज़त रख ली।

(झुक कर पाँव छूता है।)

माणिकचंद—हैं! हैं! यह क्या करते हो ?

मोहन—चरण-रज लेता हूँ, माणिक बाबू! आप महान् हैं।

माणिकचंद—किन्तु एक शर्त है।

मोहन—आज्ञा करें।

माणिकचंद—यह किसी पर प्रगट नहीं करना कि रुपये मुझ से मिले थे। कभी भी।

मोहन—स्वीकार है।

माणिकचंद—वचन दो। मैं नहीं चाहता कि मेरा नाम इस मामले में निकले।

मोहन—धन्य हैं आप! महात्मा ऐसे ही होते हैं।

माणिकचंद—साधारण व्यक्ति हूँ। जो उचित समझता हूँ करता हूँ।

मोहन—आप ही लोग वास्तव में देश की सेवा करते हैं। मैं ने अभी तक आप को ग़लत समझा था। माणिक बाबू! मुझे क्षमा करेंगे।

माणिकचंद—अब तो हड़ताल जारी रह सकेगी न ?

मोहन—जी हाँ। आपने जान डाल दी। अभी जा रहा हूँ राय-बहादुर के यहाँ। कह दूँगा कि शीघ्र हड़ताल समाप्ति का विचार न करें।

माणिकचंद—जाओ। लेकिन देखो, समझदारी से काम लेना।

मोहन—आप निश्चिन्त रहें।

माणिकचंद—तब चलता हूँ।

मोहन—चलिये, मैं भी उधर से ही निकल जाऊँगा।

(दोनों जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

नौवाँ दृश्य

[गोपाल का घर। गोपाल की स्त्री लेटी हुई है। पास में रत्ना और गोपाल। रत्ना बैठी है, गोपाल खड़ा है।]

रत्ना—भैया, भाभी की तबीयत बहुत ख़राब हो रही है।

गोपाल—तो क्या करूँ बहन ? बता।

रत्ना—मुझे तो कुछ नहीं सूझता, बिना दवा के काम नहीं चलेगा। नये डाक्टर से तुम कुछ लोगे नहीं और मोहन बाबू के पास अगर कुछ होता तो वे बाज़ न आते।

गोपाल—मोहन बाबू भी हम लोगों के पीछे बर्बाद हो गये। उनका ऋण हम कैसे चुकायेगें ?

(रोगिणी खाँसती है—खाँसते खाँसते बेदम हो जाती है। रत्ना पँखा करती है।)

रत्ना—भैया, कुछ उपाय करो।

गोपाल—क्या करूँ ? चोरी ? डकैती ?

रोगिणी—(कराह कर) अब सब बेकार है। मैं तो चली—

रत्ना—भाभी ! तू यह सब क्या कहती है ?

रोगिणी—ठीक कहती हूँ।

गोपाल—(समीप जाकर) सो रह चुप चाप। बोलने से थकावट बढ़ेगी।

रोगिणी—अब सो ही रहूँगी। अब तो...बोला...भी...नहीं...जाता...(खाँसी)

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—भई गोपाल ! लो—दवा लेता आया। (एक शीशी देता है)

गोपाल—(दवा लेकर) मोहन बाबू ! अब दवा......

मोहन—एक खूराक पिला दो। मैं इंजेक्शन देता हूँ। (जेब से सिरिंज आदि निकालता है) माँ ! ओ माँ, ज़रा गर्म पानी दीजो।

माँ—(नेपथ्य से) अच्छा बेटा।

मोहन—हड़ताल के लिये रुपये भी मिल गये।

गोपाल, रत्ना—कहाँ से ? कैसे ?

मोहन—सो नहीं बताऊँगा। किन्तु पन्द्रह सौ—अब कोई पर्वाह

नहीं है। मज़दूर हार नहीं सकते। आधे यूनियन में दे आया हूँ—वोट देने के लिये। मज़दूरों का हौसला दूना हो जायगा।

गोपाल—कैलाश बाबू को मालूम होगा तो मानो बिच्छू काट खायगा।

मोहन—वहाँ भी गया था। कैलाश बाबू दफ्तर में बिठा कर अंदर गये रायसाहब से बात करने। घंटा भर बैठा रहा। फिर आकर बोले कि कल जवाब देंगे।

(माँ का प्रवेश—एक कटोरा पानी लिये)

माँ—दवा कहाँ से ले आये बेटा।

मोहन—बाज़ार से। अब घबड़ाओ नहीं माँ! तुम्हारी बहू अच्छी हो जायगी! (सिरिंज साफ़ करता है) रत्ना, बाँह निकाल दे इनकी। (रत्ना रोगिणी की बाँह निकालती है। उसी समय पुलिस इंस्पेक्टर तथा दो कान्स्टेबल और कैलाश आते हैं। सब चौंकते हैं। मोहन हाथ में सिरिंज लिये घूम कर देखता है)

कैलाश—यही हैं हज़रत।

इन्स्पैक्टर—डाक्टर मोहन! मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ!

माँ—गिरफ्तार! (हाथ से कटोरा छूट जाता है।)

मोहन—गिरफ्तार? किस जुर्म में?

इन्स्पैक्टर—चोरी के जुर्म में। (कान्स्टेबलों को इशारा करता है, वे मोहन को पकड़ लेते हैं)

मोहन—चोरी? कैसी चोरी?

इन्स्पैक्टर—आप आज इनके (कैलाश की ओर इशारा करके) यहाँ गये थे न? वहीं इनकी अनुपस्थिति में पन्द्रह सौ के नोट चोरी

गये हैं । देखूँ आपकी जेबें (मोहन की तलाशी लेता है, कुछ नोट निकलते हैं)।

इन्स्पैक्टर—देखूँ कैलाश बाबू! नंबरों की लिस्ट। (कैलाश लिस्ट देता है । मिलाता है।) देख लीजिये, नंबर मिलते हैं। बाकी कहाँ है ?

मोहन—लेकिन मैंने चोरी नहीं की ।

इन्स्पैक्टर—तो यह नोट कहाँ से आये ?

मोहन—ये नोट ?

इन्स्पैक्टर—जी हाँ, ये नोट। चलिये ।

(हथकड़ी लगा देता है। रत्ना अस्फुट चीत्कार कर आगे आती है।)

रत्ना—सब झूठ है। छोड़ दो इन्हें।

इन्स्पैक्टर—यह औरत कौन है ? हटाओ इसे ।

(सिपाही धक्का देकर एक ओर ठेल देता है)

गोपाल—(रोष से) खबरदार ?

इन्स्पैक्टर—मेरे कर्तव्य में बाधा पहुँचाने पर तुम भी गिरफ्तार कर लिये जाओगे। चलिये डाक्टर साहब।

मोहन—चलता हूँ। लेकिन, मुझे यह इंजेक्शन दे लेने दीजिये । रोगिणी की अवस्था शोचनीय है ।

कैलाश—ले लीजिये वह सब भी। इसी चोरी के रुपये से खरीदा होगा। (इन्स्पैक्टर मोहन की ओर देखता है)

मोहन—खरीदा तो इसी रुपये से है।

गोपाल—चोरी के रुपये से ?

रत्ना—कभी नहीं। भैया ! क्या तुम भी इसे सच समझते हो ?

गोपाल—मोहन बाबू ! रुपया कहाँ से मिला था ?

मोहन—मैंने चुराया नहीं है। इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता गोपाल !

इन्स्पैक्टर—अच्छा जनाब ! अब चलियेगा कि...(खींचता है माँ रोती हुई आगे बढ़ती है। सिपाही धकेल देता है। वह गिर पड़ती है। कैलाश, इन्स्पैक्टर, मोहन, सिपाही जाते हैं। गोपाल स्तब्ध खड़ा रहता है। रोगिणी ज़ोर से खाँसती है। खाँसते खाँसते बैठ जाती है। फिर दम घुटने लगता है। गिर पड़ती है और निश्चेष्ट हो जाती है।)

गोपाल—(ध्यान टूटता है, देखकर) देख रत्ना ! यह कैसी हुई जाती है। (रोगिणी का सिर उठाता है—रत्ना पंखा करती है।

रत्ना—भाभी ! भाभी ! हाय माँ...देख तो भाभी ! (रो उठती है। रोगिणी का शरीर काँपता है। फिर सिर लटक जाता है। रत्ना, और माँ रोती हैं। गोपाल रोगिणी का सिर ज़मीन पर छोड़ खड़ा हो जाता है। फिर विक्षिप्त सा चारों ओर देखता है। पागलों सा भागना चाहता है, किन्तु लाठी हाथ से छूट जाती है। लँगड़ाने के कारण गिर पड़ता है।)

पर्दा गिरता है

दसवाँ दृश्य

(कैलाश का कमरा । कैलाश अकेला टहल रहा है ।)

कैलाश—(स्वगत) चले थे बच्चू मुझसे वैर साधने ! अब देखूँ कितने दिन तक जेल में सड़ते हैं । और वह रत्ना ! बड़ा इठलाती थी ! अब आटे-दाल का भाव मालूम होगा । (हँसता है) पर क्या खूब फाँसा ! साँप भी मरा, लाठी भी न टूटी ।

(रत्ना का प्रवेश)

रत्ना—कैलाश बाबू !

कैलाश—अब आई हो ? क्यों क्या तुम्हारे सहायक अब नहीं रहे ?

रत्ना—कैलाश बाबू ! क्या इतना सता कर भी आपका दिल नहीं भरा ? जले पर नमक क्यों छिड़कते हैं ?

कैलाश—नमक छिड़कता हूँ ? तो और क्या करूँ ? तूने और कुछ करने ही नहीं दिया । मैं तो चाहता था तुझे रानी बनाना । तूने भिखारिन रहना ही अच्छा समझा, तो मैं क्या करता ?

रत्ना—कैलाश बाबू ! आप से भीख माँगने आई हूँ ।

कैलाश—(हँस कर) भीख ? तब तो तुम हुक्म चला सकती थीं !

रत्ना—हाँ भीख ! (घुटने टेक कर) नारी की कमज़ोरी का प्रतीक उसका आँचल है । वही आँचल पसार कर आपसे भीख माँगती हूँ । क्या आप दया नहीं करेंगे ?

कैलाश—जानती हो मैं कौन हूँ ? वही जिसे एक दिन तुमने दुत्कारा था ।

रत्ना—जानती हूँ । उस समय समझी थी कि दुनियाँ में न्याय है । आज अपनी उस भूल का प्रायश्चित्त करने आई हूँ ।

कैलाश—इसी तरह प्रायश्चित्त होगा ?

रत्ना—हाँ ! आपसे भीख माँगकर। याद कीजिए उस दिन आप भिखारी थे, आज मैं।

कैलाश—क्या माँगती हो ?

रत्ना—मोहन बाबू को छुड़ा दीजिए। उन पर से झूठा मुकदमा उठा लीजिए।

कैलाश—अभी तक मोहन ही ?

रत्ना—आप धनी हैं। धन की अतुल शक्ति आप के पास है। एक आदमी को दुनियाँ में रहने देने से आपका क्या बिगड़ेगा ? उन्हें छुड़ा दीजिए।

कैलाश—तुम अपने लिए जो कहो करने को तैयार हूँ।

रत्ना—मेरे लिए आप कर ही क्या सकते हैं ?

कैलाश—जो कहो।

रत्ना—कैलाश बाबू ! औरत का नाम कच्चा घड़ा है। ज़रा सी ठेस लगते ही फूट जाता है। फिर जुड़ता नहीं, चाहे चाँदी से मढ़ दिया जाय। मुझे तो आप बदनाम कर ही चुके हैं। और क्या कीजिएगा ? मोहन बाबू को ही छुड़ा दीजिए।

कैलाश—अगर उसे ही छुड़ा दूँ तो मेरे इतना कुछ करने का फ़ायदा ही क्या हुआ ? जानती हो इसी दिन के लिए मैंने क्या नहीं किया ? रस्सी काटी, (रत्ना चौंकती है) हाँ, रस्सी काटी। गोपाल को रास्ते से हटाया और अब मोहन को......उसे छोड़ दूँ ?

रत्ना—यह पाप क्यों सिर पर लीजिएगा ?

कैलाश—पाप ! हुँ ! वह सब डर मुझे नहीं है। अपनी इच्छा का पूरा न होना ही मेरे लिये पाप है।

रत्ना—आपकी इच्छा क्या है ?

कैलाश—तुम जानती हो।

रत्ना—मेरा शरीर ही न आप चाहते हैं ? उसका मूल्य दीजिएगा ?

कैलाश—जो कहो।

रत्ना—मोहन बाबू को छुड़ा दीजिये।

कैलाश—मेरा काम हो जाय तो वह कहीं रहे, मुझे क्या ? मेरा तो मतलब इतना ही था कि वह मेरे रास्ते से हट जाय।

रत्ना—तो आप उन्हें छुड़ा देंगे ?

कैलाश—हाँ अगर तुम—

रत्ना—मैं कह चुकी। आप उन्हें छुड़ा दें, मेरा शरीर ले लीजिएगा।

कैलाश—रत्ना ! (हाथ पकड़ कर उठाना चाहता है)

(कमला का प्रवेश)

कमला—(गर्जकर) खबरदार जो उसे छुआ तो ?

(कैलाश और रत्ना चौंकते हैं)

कैलाश—(क्रोध से) तू यहाँ क्या करने आई है ? जा अपने कमरे में।

कमला—जाती हूँ। (रत्ना के पास जाकर हाथ पकड़ कर उठाती है) चल बहन ! यहाँ से। मैं नहीं जानती थी कि मैं ऐसे दुष्ट आदमी की बहन हूँ। उसके बदले में मैं तुमसे माफ़ी माँगती हूँ। अगर कर सके तो माफ़ कर दे। मुझे भी, मेरे भाई को भी। (झुकने लगती है, रत्ना रोक लेती है। आँखों में आँसू।)

रत्ना—आपने मुझे बचा लिया। (कैलाश जाता है)

कमला—मत घबड़ा, रत्ना ! मोहन बाबू का बाल भी बाँका न होगा। जाती हूँ बाबू जी से कहने। सभी बातें जान कर वे एक दिन भी उन्हें जेल में रहने न देंगे।

रत्ना—भगवान् तुम्हें इसका फल देंगे बहन !

कमला—तुम उन्हें बहुत चाहती हो ?

रत्ना—मैं विधवा हूँ। किसी को चाह नहीं सकती, परन्तु उनकी पूजा कर सकती हूँ—दूर से।

कमला—और वे ?

रत्ना—वे ? उनके लिये तो मैं मानों हूँ ही नहीं। परन्तु आप तो जानती होंगी ?

कमला—मैं कैसे जानूँगी ?

रत्ना—वे तो आपकी ही पूजा करते हैं।

कमला—हट् !

रत्ना—मैं तो शुरू से ही जानती हूँ।

कमला—यह जान कर भी क्यों आग में कूदी थीं ?

रत्ना—यह पतंग से पूछना। वह क्यों दिये पर मरता है !

कमला—चलो, बाबूजी से कह दें सब बातें।

रत्ना—उनके सामने मैं न जा सकूँगी।

कमला—अच्छा, मैं ही कहती हूँ। तुम जाओ घर।

(रत्ना जाती है, कमला भी जाती है।)

पर्दा गिरता है।

ग्यारहवाँ दृश्य

[रायबहादुर बेचैनी से इधर उधर टहल रहे हैं। कमला सिर झुकाये खड़ी है]

रायबहादुर—सच कह रही हो कमला! कैलाश, मेरा बेटा कैलाश, ऐसा पतित! उफ्! क्या यही सुनना बाकी था? कहाँ है वह। बुला तो उसे। (कमला चुप रहती है) ओ बुधुआ!

बुधुआ—(नेपथ्य से) जी हुज़ूर। (बुधुआ का प्रवेश)

रायबहादुर—कैलाश को तुरंत भेज दे।

बुधुआ—अच्छा हुज़ूर। (जाता है)

(कैलाश का प्रवेश)

रायबहादुर—कैलाश! क्या यह सत्य है? (कैलाश चुप) बोलते क्यों नहीं? (कैलाश चुप है) तुमने रस्सी काटी, जाल रच कर मोहन को जेल भिजवाया?

कैलाश—कौन कहता है?

रायबहादुर—पूछ कमला से।

कैलाश—(धीरे से) झूठ बोलती है।

रायबहादुर—(गर्ज कर) झूठ बोलती है! और तुम बड़े सच्चे हो। शर्म नहीं आती बहन को झूठी कहते! या इतने पाप करके शर्म भी धोकर पी गये। निर्लज्ज! बेहया! मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक न रखा। क्या अपने इसी घृणित स्वार्थ के लिये मज़दूरों को इतना सता रहा था? इसी स्वार्थ के लिये इतनी जानें लीं? इसी लिये मेरी बातों का उल्लंघन करके ज़िद कर रहा था? अच्छा था कि जन्म लेते ही मर

जाता। यह दिन तो न देखना पड़ता। तुम्हारे इन पापों का प्रायश्चित मैं कैसे करूँ? तुमने किसी लायक नहीं रखा। मज़दूरों के सामने सिर भी न उठा सकूँगा।

कैलाश—बाबूजी!

रायबहादुर—चुप रहो। तुम्हारे ऊपर भार देकर फल भोग चुका। अब ज़रा सफ़ाई करने दो। कमला! बेटी! मज़दूरों के नेताओं को खबर कर के बुलवा लो।

कमला—अभी, बाबूजी?

रायबहादुर—हाँ, अभी, और बुधुआ को भेज। मोहन के बारे में भी लिख दूँ कि रुपये उसे मैंने ही दिये थे। क्या करूँ? झूठ बोलना ही पड़ेगा। दूसरा चारा नहीं है।

(कमला जाती है। रायबहादुर कागज़ पर कुछ लिखते हैं। बुधुआ का प्रवेश)

बुधुआ—हुज़ूर!

रायबहादुर—लो, यह चिट्ठी दारोगा साहब को देना। अगर वह कहें तो मैजिस्ट्रेट साहब के पास भी चले जाना। मोहन बाबू को अभी लिवाते आओ, मैं ज़ामिन हूँ।

बुधुआ—(खुशी से) जो हुक्म हुज़ूर।

(चिट्ठी ले कर जाता है)

रायबहादुर—और तुम कैलाश! कुछ दिन के लिये बाहर चले जाओ। तुम इस लायक नहीं हो कि कारखाना चला सको। काम चलने लगे, लोग इस बात को भूल जायँ, तब लौट आना।

(कैलाश चुपचाप जाता है। रायबहादुर टहलने लगते हैं।)

पर्दा गिरता है

बारहवाँ दृश्य

[गोपाल का घर। मजदूर इकट्ठे हैं।]

पहला—मोहन बाबू गिरफ्तार हो गये ? अब क्या होगा ?

दूसरा—होगा क्या ? जो होना था सो होगा।

तीसरा— रुपया तो दे ही गये हैं। काम चलेगा।

पहला—चोरी का रुपया !

(रत्ना का प्रवेश)

रत्ना—(गुस्से से) कौन कहता है चोरी का रुपया ? किस में हिम्मत है जो उन पर चोरी लगावे ? क्या तुम लोग उन्हें जानते नहीं हो ? जिन्होंने अपनी सब संपत्ति दान कर दी क्या वे चोरी करेंगे ?

तीसरा—अगर की भी, तो अच्छे काम के लिये।

पहला—चोरी चोरी है। चाहे किसी काम के लिये हो। चोरी के रुपये से हड़ताल कैसे चलेगी ? सब पकड़े जायँगे।

गोपाल—तो क्या चाहते हो ? मुझे क्या ? जो होना था हो गया। मैं बेकार हूँ। स्त्री के लिए कफ़न लकड़ी तक तो जुटा न सका।

पहला—मैं तो कहता हूँ कि चलो—रायबहादुर से कह दिया जाय कि हड़ताल समाप्त है।

रत्ना—और इतने दिन का कष्ट क्या व्यर्थ जायगा ?

पहला—तुम क्या जानो दीदी !

रत्ना—मैं क्या जानूँ ? और किस घर पर हमसे ज़्यादा मुसीबत पड़ी है ? फिर भी मैं क्या जानूँ।

(बुधुआ का प्रवेश)

बुधुआ—रायबहादुर ने आप लोगों को याद किया है ।

पहला—लो बच्चू ! अब चलो जेल !

दूसरा—तो चलो ।

पहला—चलो, चल कर कह दें हड़ताल समाप्त है ।

चौथा—हाँ यही करो । चलो । (सब जाते हैं)

गोपाल—हड़ताल समाप्त है ! सचमुच समाप्त है ! (ठठा कर हँस पड़ता है) सुना रत्ना ? हड़ताल समाप्त है ! (जाता है)

रत्ना—(खड़ी खड़ी) इतना कुछ करना क्या व्यर्थ जायगा । मोहन बाबू के जाते ही उनका किया कराया खतम ! वे क्या सोचेंगे ? एक ही झोंके में संसार उजड़ गया !

(निस्तब्ध खड़ी रह जाती है)

पर्दा गिरता है

तेरहवाँ दृश्य

[रायबहादुर बैठे हैं, लिखने में व्यस्त ।]

(बुधुआ का प्रवेश)

बुधुआ—हुजूर, मोहन बाबू आये हैं ।

रायबहादुर—भेज दे ।

(बुधुआ का प्रस्थान, मोहन का प्रवेश)

रायबहादुर—मोहन !

मोहन—जी !

रायबहादुर—तुम्हें जो कष्ट हुआ बेटा, उसके लिये मुझे बहुत

अफसोस है। मैं जानता हूँ कि दोष मेरे लड़के का है। पर आशा करता हूँ कि तुम अपने उदार हृदय से उसे क्षमा कर दोगे।

मोहन—कैलाश बाबू के प्रति मेरे हृदय में जरा भी द्वेष-भाव नहीं है। लड़ाई में सभी उपाय जायज़ हैं।

रायबहादुर—लेकिन मनुष्यता से गिरना किसी भी हालत में उचित नहीं, बेटा! खैर, तुम जीते।

मोहन—हड़ताल समाप्त हो गई?

रायबहादुर—हुई नहीं है, अभी हो जायगी। मुझे कैलाश के पापों का प्रायश्चित्त करना है।

मोहन—रायबहादुर! इस भाव से नहीं, उनकी माँगों का औचित्य समझ कर।

रायबहादुर—माँगें तो उचित ही थीं। कैलाश की ज़िद थी। इसीसे लाचार था मोहन!

(कमला का प्रवेश)

कमला—(उत्सुकता से) मज़दूर लोग आ रहे हैं बाबू जी! और—(मोहन को देख) मोहन बाबू तो आ ही गये।

रायबहादुर—अब तो खुश हुई न? (कमला लजा जाती है)

(मज़दूरों का प्रवेश)

रायबहादुर—आओ भाइयो!

मज़दूर—हम लोग कहने आये थे कि हड़ताल......

रायबहादुर—हाँ, हड़ताल समाप्त कर दो। बहुत कष्ट भोग चुके। तुम्हारी सभी मागें मैं स्वीकार करता हूँ। आशा है कि इतने दिनों के

कष्ट के लिये तुम मेरे प्रति दुर्भावना नहीं रखोगे ?

(सभी मजदूर स्तब्ध होकर एक दूसरे को देखते हैं)

मजदूर—माँगें स्वीकार कर लीं !

रायबहादुर—हाँ ! तुम लोग काम पर लौट जाओ। वेतन में पच्चीस प्रतिशत वृद्धि का हुक्म दे चुका हूँ और घायलों को हर्जाना पूरा दिया जायगा।

मजदूर—(खुशी से) रायबहादुर की जय !

मोहन—मज़दूरों की ओर से मैं आप को धन्यवाद देता हूँ।

रायबहादुर—इसकी ज़रूरत नहीं, मोहन।

मजदूर—और मोहन बाबू ?

रायबहादुर—वे भी काम पर लौट जायँगे।

मजदूर—भगवान् आपको चिरायु करें।

रायबहादुर—चलो सब को खबर सुनादें।

(उठकर जाते हैं, पीछे पीछे मजदूर। कमला मोहन की ओर देखती है। मोहन उसकी ओर।)

मोहन—कमला !

कमला—हूँ ! (दोनों फिर चुप कर जाते हैं)

(प्रकाशचंद कागज़ का एक डब्बा सा लिये तेजी से आता है)

प्रकाशचंद—मोहन, तुम भी आ गये ?

मोहन—हाँ डा० प्रकाश।

प्रकाशचंद—अच्छा हुआ। मैं अब ठंढे दिल से जा सकूँगा।

मोहन—जा सकोगे ? कहाँ ?

प्रकाशचंद—दूर, बहुत दूर। जहाँ फिर तुम्हें कभी कोई कष्ट न दे सकूँ।

मोहन—हमें क्या कष्ट देते थे?

प्रकाशचंद—मोहन, पुलिस हाजत में रहकर भी कष्ट का अनुभव नहीं कर पाये? तुमसे माफ़ी माँगता हूँ। तुम्हें जेल भिजवाने में मेरा भी हाथ था। रुपये बाबू जी के द्वारा मैंने ही दिलवाये थे—उन्हें ठग कर।

(कमला चौंकती है)

मोहन—ओह!

प्रकाश—हाँ, और कमला, तुम से भी माफ़ी माँगता हूँ। किन्तु जो कुछ मैंने किया उसकी प्रेरणा भी तुम से ही मिली थी।

कमला—मुझ से?

प्रकाश—हाँ तुम से, क्योंकि तुम तुम थीं। अब जाने दो मेरे उन स्वप्नों को। वे मेरे साथ ही जा रहे हैं। और यह लो तुम्हारी चीज़ तुम्हें लौटाये देता हूँ। शायद इसे देख कर बचपन के एक साथी के अपराध भूल सको (कागज का पैकेट देता है, फिर तेजी से चला जाता है। कमला पैकेट खोलती है। उस में से सूखे फूलों का एक मुकुट निकलता है)

कमला—ओह!

मोहन—यह तो वही मुकुट है। (कमला को पहना देता है। कमला दूर अतीत की ओर देखती है। हल्की सी मुस्कान उसके चेहरे पर खेल जाती है। मोहन की आँखें उससे मिलती हैं।)

पर्दा गिरता है